आधी दुनिया

वर्ष-29, अंक -2, अप्रैल-जून 2023

महिला शिक्षण सामग्री

स्व-विकास का सफरनामा : महिलाओं की जुबानी

भाग 1

हाँ मैं स्त्री हूँ

हाँ मैं स्त्री हूँ,
पर मुझे दुःख नहीं,
क्योंकि मैं बेटी हूँ, माँ हूँ।
मुझे गर्व है अपनी भूमिकाओं पर,
धरती का रूप हूँ मैं,
कितने अंकुर पनपते हैं मुझ में।

सारे प्राणियों का अस्तित्व मुझ से है,
इसीलिए मुझमें धैर्य है, करुणा है।
जनन पालन करने की क्षमता है,
और मुझे गर्व है, अपने अस्तित्व पर।

मुझे कोई प्यार करे मेरा कोई संहार करे,
मेरा अस्तित्व बना रहेगा युगों-युगों तक।
मैं किसी के सम्मान की मोहताज नहीं,
क्योंकि मुझे विश्वास है अपने आप पर,
इसीलिए मैं गर्व से कहती हूँ कि मैं स्त्री हूँ।

मुझमें शक्ति है हर कष्टों से लड़ने की,
हर कार्य को करने की।
डरा नहीं सकते मुझे समाज के कदरदान,
किसी दहेज, भ्रूणहत्या, बेआबरू बना के।
मैं चिनगारी हूँ, किसी न किसी रूप में,
ज्वालामुखी बनकर भस्म कर दूँगी हर हत्यारे को।

मुझे डर है तो ये कि,
कहीं मैं कमजोर न पड़ जाऊँ।
अपने कर्तव्य की राह पर,
बुराई की लपटों में मिट न जाऊँ।
बचाना है अपना अस्तित्व,
और आईना दिखाना है,
औरत को निम्न समझने वाले,
गिरे मानसिकता वाले लोगों को।
पर राह आसान नहीं है ये,
क्योंकि हजारों काँटें हैं उलझाने के लिए।

इसीलिए दूर रखनी है नाजुकता,
अशिक्षा, अन्धविश्वास, अज्ञानता।
और कर्मठता जोश से,
बढ़ना है जिन्दगी की राह में,
बाजुओं में शक्ति भर कर।

क्यों? हर फब्तियाँ मुझ पर कसी जाती है,
क्यों? हर चुटकुले मुझ पर ही बनते हैं,
क्यों? मुझे सहारा देने का भ्रम,
पाला जाता हैं मन में,
स्त्री से ही डर है पुरुषत्व को,
इसीलिए घेरा जाता है हर रूप में।
कितने ही तीर चलाओ पर रुकूँगी नहीं,
बढ़ते रहेंगे कदम मेरे हर हाल में।
क्योंकि मैं ही हूँ स्त्री शक्ति रूपा,
गर्व करना है मुझे अपने अस्तित्व पर।

- साधना जोशी

वर्ष-29, अंक -2, अप्रैल-जून 2023

आधी दुनिया

संपादक
रोज केरकेट्टा

संपादक मंडल
सालगे मार्डी
सुनील मिंज
श्रावणी
शशि बारला

कलापक्ष
इंडिजिनोग्राफिक्स

संपादन कार्यालय
संवाद
203/ए, उर्मिला इन्क्लेव
पीस रोड, लालपुर
रांची - 834001 (झारखंड)
E-mail : **sarjomsamvad@gmail.com**
Website : **www.samvad.net**

पत्रिका में प्रकाशित आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के हैं, उनसे संपादकीय सहमति अनिवार्य नहीं है।

रोज केरकेट्टा द्वारा संपादित एवं प्रकाशित तथा आई.डी.पब्लिशिंग, रांची द्वारा मुद्रित

सीमित प्रसार

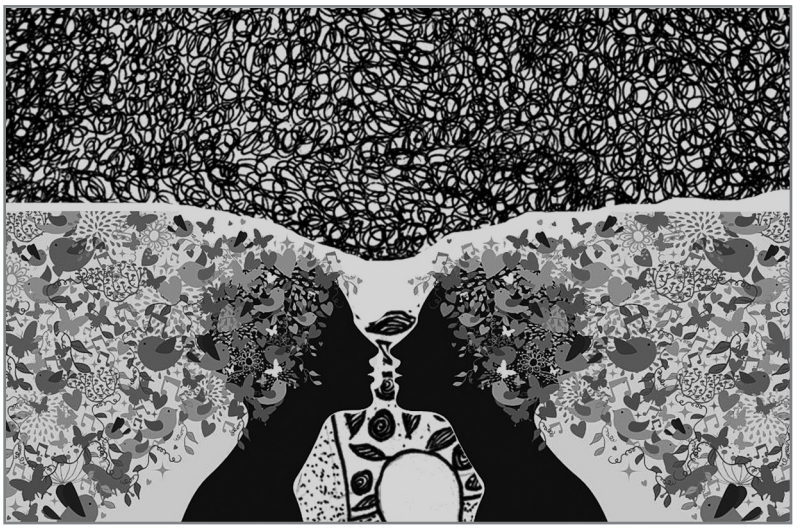

03	मेरा हक मेरी पहचान	**मालती**
05	उलझनें अब सुलझने लगी है	**पार्वती**
07	संघर्ष और रचना	**एनी टुडू**
09	अपनी अस्मिता का संघर्ष	**सरिता मुर्मू**
13	आदिवासी समाज : श्रमनिष्ठ समाज	**पूर्णिमा बिरुली**
15	नई राहें मांगती हैं महिलाएं	**ललिता**
17	शिक्षा आगे की राह को सुगम बनाता है	**सागोरी हेम्ब्रम**
18	हार के आगे जीत है	**फातिमा**
21	अनेकता में एकता	**सुमित्रा हेम्ब्रोम**
23	जीवन का यथार्थ - पथरीला	**कल्पना कुंवर**
	इसलिए राह संघर्ष की हम चुने	
25	बदलाव दबे पांव आ रहा है..	**निरसो हांसदा**
27	चलकर राह बनाते कदम	**सुशीला हेम्ब्रोम**
28	एकल मां - मौत भी तुझसे हारी है	**मनोनित रेबेका तोपनो**
33	लचक और समन्वय की ताकत	**मिनीला बास्की**
34	मां का संघर्ष	**वीणा वर्मा**
37	संवाद की गतिविधियां	**आधी दुनिया डेस्क**

महिलाओं के स्व-विकास का एक सफरनामा

संवाद एक संस्था से ज्यादा एक प्रक्रिया है। एक विचार है। यह विचार है समाज में व्याप्त विषमता और अन्याय को समाप्त करने का। इसके लिए सक्रिय पहल करना संवाद की प्रतिबद्धता है। लेकिन इस पहल के लिए जरूरी है महिला कार्यकर्त्ताओं की एक ऐसी जमात तैयार करना, जो परिवार के भीतर और समाज में प्रचलित विषमता और अन्याय के खिलाफ आवाज बुलंद कर सके। महिला कार्यकर्त्ता अपनी वजूद की रक्षा करते हुए अपने 'स्व' का विकास कर सके। समाज में अपना समुचित स्थान बना सके।

आधी दुनिया का यह अंक संवाद की इन्हीं संघर्षशील महिलाओं पर केंद्रित है। और अगला अंक भी इन्हीं महिलाओं के स्व-विकास की सहभागी यात्रा पर निकलेगा।

महिलाओं के 'संघर्षशील स्व-विकास का सफरनामा' को इसमें समेटने की कोशिश की गई है। इनमें से अधिकांश महिला जमीनी कार्यकर्त्ता हैं। लेकिन कुछ ऐसी महिलाएं भी हैं जो संवाद की 'वैचारिक -प्रक्रिया' को आगे बढ़ाने में अपनी महती भूमिका, केंद्रीय और प्रसार कार्यालय में रहकर शहरी और कस्बाई नागरिकों के बीच, निभाती रही हैं। शोषण एवं अन्याय के खिलाफ अपनी आवाज बुलंद करती रही हैं।

संवाद यह मानता है झारखंड जैसे नव-गठित राज्य में महिलाओं की भूमिका जबतक निर्णायक और बराबरी की नहीं होगी तबतक झारखंड का समुचित और न्यायपूर्ण विकास संभव नहीं होगा। इसके लिए जरूरी है झारखंड की युवा महिलाएं नेतृत्व की भूमिका में आयें। और यह तभी संभव है जब उनका स्व-विकास धैर्यपूर्वक सतत् होता रहे।

आधी दुनिया टीम ने इनके लेखों में आवश्यक सुधार करते हुए इनकी कहानी इनकी जुबानी में रख दी है। कैसा बन पड़ा? फैसला आप सुनाएं!

मेरा हक मेरी पहचान

मालती

"मानव जीवन कई अवस्थाओं से होकर गुजरता है। बचपन अर्थात बाल्यकाल सबसे स्वर्णिम अवस्था है। इस समय मन में यह चिंता नहीं रहती है कि हम क्या खाएं,क्या पहनें एवं मेरा भविष्य क्या होगा। माता-पिता की छत्रछाया में रहने से इन सारी चीजों से कभी पाला ही नहीं पड़ता है। या हम कह सकते हैं कि बेफिक्री से रहने का नाम ही बचपन है। मौज-मस्ती खेलकूद इन सब के साथ जीना ही बचपन को सही मायने में जीना है। मैंने भी अपना बचपन मस्ती से गुजारा। जब तक बाबा जीवित थे, तब तक यह नहीं सोचा कि मुझे आगे क्या करना है। जब बाबा गुजर गये तब मेरे सामने यह सवाल मुंह बाये खड़ा था कि मैं क्या करूं। आगे की कोई योजना नहीं थी। सुमित्रा दीदी के साथ रहते हुए मैंने समाज कर्म को समझा था। अतः सामाजिक कार्य करना मुझे सटीक लगा।"

झारखंड राज्य के गुमला जिले के सिसई प्रखंड के अंतर्गत एक गांव है लकेया। इसी लकेया गांव में मेरा जन्म हुआ है। मेरे पिता का नाम निरंजन उरांव एवं माता का नाम धिबल देवी है। मेरी प्रारंभिक शिक्षा कन्या मध्य विद्यालय सिसई, माध्यमिक शिक्षा माधि उच्च विद्यालय सिसई तथा इंटर तक की पढ़ाई बी.एन. कॉलेज सिसई से हुई। मेरे परिवार में माता-पिता, 2 भाई, 2 बहन, भाभी एवं उसके दो बच्चे हैं। मैं भाई बहनों में दूसरे नंबर पर हूं। जीवन बहुत अच्छे से चल रहा था। परंतु कहते हैं न समय का पहिया एक सा नहीं घूमता है। कभी आप सुख में जीते हैं तो कभी दुःख में। मेरे साथ भी ऐसा हुआ। 2009 में पिताजी के गुजर जाने के बाद परिवार को काफी कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। कष्ट भरे जीवन गुजर रहे थे। कष्ट भी जब आता है तो छप्पर फाड़कर आता है। घर में आर्थिक तंगी तो थी ही, ऊपर से अचानक पेड़ से आम तोड़ते वक्त मैं गिर गयी और मेरी रीढ़ की हड्डी में बहुत चोट आई। चोट इतना गंभीर था कि रीढ़ के नस का ऑपरेशन करना पड़ा। छह माह मैं बिस्तर पर पड़ी रहीं। धीरे-धीरे स्वास्थ्य में सुधार होने लगा।

ठीक होने के बाद मुझे लगने लगा कि अपने घर को चलाने के लिए मुझे कुछ करना चाहिए। पर क्या करूं? कुछ समझ में नहीं आ रहा था। मेरे क्षेत्र में सुमित्रा दीदी 'जुड़ाव' से जुड़कर ग्राम सभा सशक्तिकरण, महिला अधिकार, आदिवासी मुद्दों पर कार्य कर रही थी। बीच-बीच में मैं उनके कार्यक्रमों में जाती तो नयी-नयी चीजों को जानने एवं नये-नये लोगों से मिलने का अवसर मिलने लगा।

मेरे सामाजिक कार्यों के सफर की शुरुआत पर्यावरण चेतना केन्द्र, पोटका के कार्यों से हुई। पर्यावरण चेतना केन्द्र के सिद्धेश्वर दा मेरे गांव लकेया आये थे। सुमित्रा दीदी के साथ मैं उनसे पहले भी मिल चुकी थी। उन्होंने मुझसे पूछा कि मालती, पर्यावरण चेतना केन्द्र का काम लकेया में शुरु होने वाला है क्या तुम इससे जुड़ना चाहोगी? मैंने तुरंत हामी भरी और 'पर्यावरण चेतना केन्द्र' के कार्यालय पोटका गयी। पोटका से ही प्रशिक्षण के लिए मैं रायपुर चली गई। प्रशिक्षण से लौटने के पश्चात मुझे क्या कार्य करना है? कैसे करना है? यह बतलाया गया। 10 गांवों का चयन कर उसमें ग्रामसभा सशक्तिकरण, महिला सशक्तिकरण, पारंपरिक खेती इत्यादि कामों के प्रति लोगों को जागरुक करना था। अपने गांव से तो मैं भलीभांति परिचित थी परंतु अन्य गांव मेरे लिए अनजान थे। मैं अपने भाई की मदद से गांव में संपर्क करने लगी। संपर्क के दौरान ही गांव के ग्राम प्रधान, मुखिया, सहिया, वार्ड एवं महिला समूह से सीधा

परिचय हुआ। मैं जब भी कोई नया गांव जाती तो महिला समूह एवं गांव के लोगों को अपना परिचय देती कि मैं मालती लकेया गांव से आयी हूं फिर अपना काम बताती। लोगों से जान पहचान बढ़ने के पश्चात मुझे काम करने में आसानी होने लगी। मैं गांव के ग्राम सभा बैठकों में जाने लगी वहां लोगों से मिलकर ग्राम सभा में महिलाओं की भागीदारी पर चर्चा करती। उस समय ग्राम सभा की बैठकों में महिलायें भाग नहीं लेती थीं। महिला समूह बनाकर उन्हें भी ग्राम सभा बैठकों में भाग लेने के लिए प्रेरित करती। 2015 में मैं 'संवाद' से जुड़ गयी। 'संवाद' से जुड़ने के बाद विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षणों में भाग लेने लगी। इससे नयी-नयी जानकारी मिलती। अपने अंदर आत्मविश्वास भी आने लगा। कार्यशाला, सम्मेलनों में जब बात रखने को कहा जाता तो शुरू-शुरू में डर लगता पर धीरे-धीरे डर खत्म होने लगा, झिझक भी मिटा। अब मैं भी अपनी बातों को बेबाकी से रखने लगी हूं।

मैं भी समूह बनाने के बाद बचत करने लगी। बचत के पैसों से हमारे समूह की महिलायें शमियाना, कुर्सी, टेंट, ड्रम एवं खाना बनाने के बर्त्तनों इत्यादि खरीद की है। जब भी गांव के किसी परिवार में कोई भी कार्यक्रम होता है तो समूह की महिलायें गांव के लोगों को कम दर पर इन सामानों की आपूर्त्ति करती हैं। इसके दो फायदे होते हैं - गांव के लोगों को कम दर पर सामान मिलता है एवं गांव का पैसा गांव में ही रह जाता है। समाज के साथ-साथ महिलाओं को भी आर्थिक लाभ होता है।

लकेया की महिला समूह से प्रभावित होकर मेरे कार्यक्षेत्र के अन्य गांव की महिलायें भी संगठित होने लगीं एवं समूह बनाकर बचत करने लगीं। उन लोगों ने भी अपने आय को बढ़ाने के लिए कई अभिक्रम शुरू किये हैं। कोई समूह सूअर पालन कर रही हैं तो कोई समूह मुर्गी पालन कर रहा है। अब महिला समूहों ने बैंक में अपना खाता भी खुलवा लिया है। संगठित होकर काम करने के उनके अनुभवों से अन्य लोगों को भी लाभ होता है।

महिलायें संगठित होकर समाज के समस्याओं को भी सुलझा रही हैं। सड़क पर जल जमाव हो, रास्ता बनवाना हो वे प्रशासन से अब गुहार नहीं लगातीं, बल्कि अपना कार्य पूरा करवा ही लेती हैं। बचत के साथ-साथ अन्य सामाजिक मुद्दों पर चर्चा करती हैं। इससे पता चलता है कि वे राजनीतिक चेतना से लैस हो रही हैं। जब उन्हें देखती हूं तो मेरे अंदर भी ऊर्जा भर जाती है।

परियोजना के माध्यम से ग्राम सभा सशक्तिकरण, सतत् आजीविका, महिला सशक्तिकरण, सरकारी योजनाओं तक ग्रामीणों की पहुंच बढ़ाने का कार्य कर रही हूं। साथ ही जिनको भी आय प्रमाण पत्र, जाति प्रमाण पत्र, मृत्यु प्रमाण पत्र, जन्म प्रमाण पत्र इत्यादि बनवाना होता है, उसके आवेदन फार्म भरने में सहयोग करती हूं। सरकारी योजना का लाभ लोगों को मिले इसके लिए उन्हें जागरुक तो करती हूं साथ ही फार्म भरने इत्यादि में मदद भी करती हूं। जब भी ग्रामीणों को मेरी जरूरत होती है हरदम उनके साथ खड़ा होने का प्रयास करती हूं। बहुत खुशी मिलती है जब हमारे प्रयास से किसी को कुछ लाभ पहुंचता है। आज मेरी पहचान यदि समाज में बनी है तो वह 'संवाद' के बदौलत ही क्योंकि वहां से जुड़ने के पश्चात ही मेरे अंदर मुद्दों को समझने, उसका विश्लेषण करने एवं कोई भी समस्या के समाधान हेतु आत्मविश्वास आया है। आज जब महिलायें ग्राम सभा की बैठकों में आती हैं और अपनी बातों को रखती हैं तो मन को सकून मिलता है और लगता है सचमुच में मैं जो कार्य कर रही हूं क्या यह इसी का प्रतिफल है। पहले घर से अकेले बाहर जाने में डर लगता था। अब अकेले कहीं भी आ जा सकती हूं। मंचों से अपनी बातों को रख पाती हूं। यह तभी संभव हो पाता है जहां आप काम करते हैं वहां आपके विकास के लिए अभिक्रम किये जाते हैं। सचमुच 'संवाद' से जुड़े साथियों ने हमेशा मेरा मनोबल बढ़ाया है। आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया है। आज मेरी पहचान सामाजिक कार्यकर्त्ता के रुप में बन चुकी है। जब भी कोई बैठक इत्यादि होती है लोग मुझे बुलाते हैं तो बहुत अच्छा लगता है। मैं आगे भी अपना पूरा समय गांव समाज को देना चाहूंगी ताकि मेरा समाज आगे बढ़े। ■

उलझनें अब सुलझने लगी हैं

पार्वती

''आज जमाना बदल रहा है। बदलते जमाने के साथ-साथ परिवार का ढांचा भी बदल रहा है। संयुक्त परिवार के स्थान पर व्यक्तिगत परिवारों की संख्या बढ़ रही है। संयुक्त परिवार के अपने लाभ-हानि हैं तो व्यक्तिगत परिवार के अपने। संयुक्त परिवार में सुख दुःख साझा होता है। कार्यों का बंटवारा होता है। अभिभावक की छत्र छाया में होने के कारण लोग सुकून से रहते हैं। बड़ों की आज्ञा माननी पड़ती है वहीं व्यक्तिगत परिवार में जब भी कोई दुःख होता है उसे अकेले झेलना पड़ता है। कार्यों का बोझ भी अकेले उठाना पड़ता है, खासकर महिलाओं को। महिला यदि कामकाजी हो तो घर बाहर की जिम्मेवारी दोनों करना होता है। बच्चा छोटा हो तो कभी-कभी कार्य भी छोड़ना पड़ता है। मैं जब संयुक्त परिवार में रह रही थी तो सब कुछ ठीक-ठाक था, पर जैसे ही घर का बंटवारा हुआ कार्यों का दोहरा बोझ बढ़ा। परिवार चलाने की जिम्मेवारी भी निभानी पड़ी। बाल बच्चों की देखभाल भी करनी पड़ती। बच्चा छोटा था तो काम भी छोड़ना पड़ा। पर सीखने एवं आगे बढ़ने की लालसा को मैंने कभी नहीं छोड़ा। परिवार चलाने के लिए मैंने कई क्षेत्रों में काम किया और हर जगह मैंने कुछ नित नया सीखा। अपने इन्हीं खट्टे-मीठे अनुभवों को साझा करते हुए मुझे खुशी भी मिल रही है तो संघर्षों को याद करके आंखों में नमी भी छा जा रही है। तो चलिए मेरी विकास यात्रा के संस्मरणों को जानने के लिए तैयार हो जाइए।''

रामगढ़ जिले का एक गांव है - बड़की लाड़ी। इसी गांव में मेरा जन्म हुआ। पिता सोनाराम महतो एवं माता रासो देवी की मैं सबसे छोटी बेटी हूं। हम चार बहनें ही हैं। बहनों में मैं सबसे छोटी! सबसे छोटी होने के कारण लाड़ दुलार भी ज्यादा मिलता।

बचपन ठीक-ठाक गुजरा। प्राथमिक शिक्षा राजकीय प्राथमिक विद्यालय लाड़ी, माध्यमिक की पढ़ाई कृष्ण बल्लभ उच्च विद्यालय लाड़ी में तथा इंटर एवं स्नातक की पढ़ाई रामगढ़ कॉलेज रामगढ़ में हुई। पढ़ाई के दौरान ही मेरी शादी हो गई।

शादी के बाद भी मैंने अपनी पढ़ाई जारी रखा। जब मैं बी.ए. फाइनल वर्ष की परीक्षा का फार्म भरा उसी दिन से मेरी तबीयत खराब हो गई। मैं तो ठीक हो गई परंतु मेरे ससुर गंभीर रूप से बीमार पड़ गये। उन्हें अस्पताल में भर्ती कराना पड़ा। उनके इलाज में काफी पैसा खर्च करने के बावजूद हम उन्हें बचा नहीं पाये। इलाज इतना महंगा कि हम सब कर्ज में डूब गये। उनके जीवित रहते घर ठीक से चलता था परंतु उनके मृत्यु के पश्चात सब अलग-अलग हो गये। यों कह सकते हैं कि ससुर की मृत्यु के बाद मेरी स्व की स्थिति काफी खराब हो गई। घर में खाने को लाले पड़ गये पर मैंने हिम्मत नहीं हारी। लोगों से कर्जा लेकर बी.ए. की परीक्षा दी। उसके बाद बच्चों को ट्यूशन पढ़ाना एवं सिलाई करना शुरू किया तो घर का कुछ खर्चा निकलने लगा। 1998 ई. में बी.ए. उत्तीर्ण करने के बाद बालिका उच्च विद्यालय लारी सुकरीगढ़ा में संस्कृत शिक्षिका के रूप में योगदान दिया। विद्यालय जाने आने के क्रम में पता चला कि बिहार शिक्षा परियोजना में बहाली चल रही है। मैंने साक्षात्कार दिया एवं प्रशिक्षण के उपरांत ग्राम शिक्षा समिति गठन का कार्य करने लगी।

उस समय प्रतिदिन के हिसाब से 80 रुपये मजदूरी मिलती थी। उसके बाद मैंने 1999 में मास्टर ट्रेनर के लिए साक्षात्कार दिया एवं चयनित भी हो गई। प्रशिक्षण के उपरांत हजारीबाग जिले के विभिन्न प्रखंडों के प्राथमिक एवं माध्यमिक स्कूलों में अपना कार्य करने लगी जिन गांवों में बिहार शिक्षा परियोजना के तहत पहले कार्य कर चुकी थी वहां तो काम करने में कोई कठिनाई नहीं हुई पर नये जगहों में जाने से पहले मन में झिझक एवं भय रहता। इसके बाद वर्ष 2000

माइक्रोप्लानर के लिए साक्षात्कार दी। चयन होने के बाद 1 वर्ष तक उस काम को किया। काम के दौरान गांव का सर्वेक्षण करना, गांव का जारी नक्शा बनाना, आंकड़ा इकट्ठा करने के बाद ग्रामसभा बैठक कर शिक्षा समिति के पदाधिकारियों को सौंपना होता था। उस समय 100 रु. प्रतिदिन के हिसाब से पैसा का भुगतान मिलता था जिससे घर चलाने में राहत होने लगी। एक वर्ष तक इस काम को करने के बाद (बी.आर.पी.) ब्लॉक रिसोर्स पर्सन के पद पर योगदान किये एवं वर्ष 2007 तक उसमें काम किया तब मानदेय के रुप में 3000/- रुपये प्रतिमाह मिलता था। कुछ दिन बाद काम छूट गया और घर में बैठ गये। बच्चा छोटा था। बच्चे की देखभाल के साथ-साथ मैं बकरी पालन एवं ट्यूशन का कार्य करने लगी क्योंकि बाहर जाकर कार्य करती, तो पति बोलते बच्चा प्यारा कि पैसा! जब बच्चा स्कूल जाने लगा तो मैंने 'जनकल्याण सेवा' संस्था के साथ जुड़कर कार्य करने लगी। फिर वह कार्य भी छूट गया और मैं बेकार घर में बैठ गयी।

वर्ष 2013 में 'संवाद' से जुड़ी और 'संवाद' से जोड़ने का माध्यम बी.एन. ओहदार बने। उन्होंने ही गुलाबचंद्र प्रजापति से हमें मिलवाया और नियुक्ति प्रक्रिया के बाद मैं 'संवाद' से जुड़कर कार्य करने लगी। शुरू-शुरू में कार्य करने में थोड़ी घबराहट होती थी परंतु साथियों से परिचय एवं उनके सहयोग से वह घबराहट भी कम होने लगी। 'संवाद' से जुड़ने के बाद ही मैंने जाहेरथान, जोरिया, ससनदरी जैसे शब्दों को चुना एवं उसका अर्थ जाने। नयी-नयी चीजों को जानने समझने से एक अलग आनंद की अनुभूति होती थी। पहले बाहर के लोगों से बात करने में डर लगता था अब डर गायब एवं झिझक खत्म हो गयी है। कोई भी व्यक्ति हो कहीं का भी हो, उनसे बेहिचक परिचय लेते हैं और बातचीत भी करते हैं। पहले घर से अकेले निकलने में डर लगता था। अब हिम्मत बढ़ गयी है। दिन क्या रात में भी अकेले सफर कर लेती हूं।

क्षेत्र में कार्य करने से आपसी संपर्क बढ़ा है। पहले गांव जाती थी तो लोग देखते ही घर के अंदर चले जाते थे परंतु अब देखते ही जोहार दी कहते हैं और धीरे-धीरे सभी महिला पुरुष इकट्ठा हो जाते हैं। गांव की समस्याओं पर चर्चा करते हैं। अब तो बाहर के कार्यक्रमों में भी यदि गांव वालों को जाने बोलते हैं तो वे तैयार हो जाते हैं। अपने कार्य के दम पर मैं क्षेत्र के लोगों का विश्वास जीत पाने में सफल हुई हूं।

जब लोगों का विश्वास प्राप्त होता है तो अपने अंदर नयी ऊर्जा का संचार होता है और कोई भी व्यक्ति दुगुने जोश के साथ कार्य करता है। उसके अंदर आत्मविश्वास आता है कि वह भी कुछ कर सकता है। मेरा भी आत्मविश्वास बढ़ा है। महिलाओं को संगठित कर उनको भी महिलाओं को संगठित कर उनको भी जागरूक करती हूं। उन्हें उनके अधिकारों की बात बताती हूं। जब महिलायें खुलकर अपनी बातों को रखती है तो मन खुशी से झूम उठता है।

सबसे बड़ा बदलाव जो मेरा हुआ है, पहले मैं अंधविश्वास को सच मानती थी। लगता था किसी के साथ नजर मिलाकर बात करूंगी तो नजर लग जायेगा। और मैं बीमार पड़ जाऊंगी अब ये सारी बातें मन से गायब हो गई है। छुआछूत को भी मानती थी। लोगों का छुआ खाना नहीं खाती थी, पानी नहीं पीती थी, अब बेझिझक एवं बेधड़क सब के साथ मिल बैठकर खाना पीना बहुत अच्छा लगता है। अब किसी के घर में खा सकती हूं, पी सकती हूं।

कार्य करते-करते समय की पाबंद हो गयी हूं। समय पर गांव जाना, बैठक में समय से पहुंचना समय पर बैठक संचालित करना, फिर इस बैठक का रिपोर्ट बनाकर समय पर कार्यालय और सुपरवाइजर को भेजना। अब दूसरे व्यक्तियों की बातों को भी गंभीरतापूर्वक सुनती हूं, समझती हूं एवं आत्मसात भी करती हूं। अनुशासित भी हो गयी हूं।

ये जो सारे बदलाव आये हैं वह कहीं न कहीं साथियों के सहयोग के कारण ही संभव हो पाया है। कोई भी चीज जब समझ में नहीं आता है तो भैया एवं दीदी लोग से तुरंत पूछ लेती हूं। और वे लोग भी मेरे मन में उठते सवालों का हल ढूंढ़ने में मेरी मदद करते हैं। 'संवाद' के हर एक व्यक्ति ने मेरे मनोबल को बढ़ाया है, मुझे साथ दिया है। आज जो कुछ भी मैं कर पाती हूं या करने का सोचती हूं उन सबों में साथियों का भी हाथ है। मेरे स्व विकास की यात्रा में तमाम सहयोगी को धन्यवाद एवं जोहार! ■

संघर्ष और रचना की हमारी यात्रा

एनी टुडू

''सपना हर कोई देखता है पर कुछ लोग अपने सपने को साकार करने के लिए कोशिश करते हैं और सफल भी होते हैं पर कुछ लोग सपना तो देखते हैं पर उसे साकार करने के लिए कुछ प्रयत्न नहीं करते। पर मैंने जो सपने देखे उसे पूरा करने के लिए प्रयत्न भी किये। कभी-कभी बाधायें भी आई पर उन बाधाओं को भी पार किया। तमाम विपरीत परिस्थितियों के बावजूद अपने सपने को कभी मरने नहीं दिया। संघर्ष करती रही। कभी सफल होती कभी असफल। पर अंततः मैंने अपने सपने को पूरा किया। मेरे सपने, मेरी संघर्ष की कथा से आप परिचित होंगे और मेरी स्व विकास की यात्रा से भी।''

मेरा नाम एनी टुडू है मेरे माता का नाम फूलमनी मरांडी एवं पिता का नाम जगदीश टुडू है। मेरा जन्म दुमका जिले के लखीकुण्डी पंचायत अंतर्गत बाघमारा गांव में हुआ। हमलोग दो बहन एवं दो भाई हैं। पिताजी स्वास्थ्य विभाग में चर्तुथवर्गीय कर्मचारी थे पर उनकी शराब की लत के कारण अधिकांश पैसा उसी में खर्च हो जाता था। घर के खर्च के लिए पैसा या तो देते नहीं थे या कम देते थे। माँ किसी तरह कम पैसों से ही घर का खर्चा चलाती थी। आर्थिक तंगी के कारण मैं मैट्रिक तक पढ़ाई ही कर पायी फिर कुछ दिन करीब तीन महीने सिलाई-कटाई का प्रशिक्षण प्राप्त की। प्रशिक्षण केन्द्र दूर होने के कारण प्रशिक्षण पूरी नहीं कर पायी। इसके बाद 6 महीने का नर्सिंग का कोर्स किया। उस समय हमारे क्षेत्र में 'मानवी' संस्था का कार्य चल रहा था उन्होंने मुझे अपने कार्य से जोड़ा। मैं महिलाओं का समूह बनाती, उनसे बचत करवाती और समूह को बैंक से जोड़ने का कार्य करती थी जिसके एवज में मुझे महीना आठ सौ रूपये मिलते थे। यहां करीब आठ महीने कार्य करने के बाद मेरी शादी हो गई। ससुराल सुखी संपन्न परिवार था। ससुर प्राथमिक विद्यालय में प्रधानाध्यापक थे। पति भी ग्रेजुएट थे। उनका ज्यादा समय अपने पिताजी को यहां वहां ले जाने, लाने में बीतता था। जिस कारण उन्होंने कोई नौकरी नहीं ज्वाइन की। उनके पास आय का श्रोत नहीं रहने के कारण छोटी मोटी जरूरतों के लिए भी उनके आगे हाथ फैलाना पड़ता था यह मुझे अच्छा नहीं लगता था। मैं सोचती अगर मुझे कहीं छोटा मोटा काम भी मिल जाय तो मैं करूंगी। मेरा मायका बाघमारा गांव 'जुड़ाव' का कार्यक्षेत्र था उस समय वहां गांव स्तर की कार्यकर्त्ता के रुप में निर्मला मुर्मू कार्य करती थी। कुछ कामों में मैं उनको सहयोग करती थी जैसे बैठक के लिए महिलाओं को घर से बुलाना इत्यादि। उन्होंने एक दिन मुझसे कहा कि क्या तुम मेरी संस्था में काम करोगी? यदि करोगी तो प्रशिक्षण के लिए तुम्हें मधुपुर जाना पड़ेगा। अपने घरवालों से राय मशविरा कर लो फिर मुझे बता देना। मैंने अपने पति एवं माँ-बाबा से पूछकर उन्हें बता दिया कि मैं काम करने के लिए तैयार हूं। पर मुझे क्या काम करना पड़ेगा इसको लेकर मन में सवाल था। तब उन्होंने कहा कि प्रशिक्षण में जाने पर तुम्हें पता चल जायेगा कि क्या-क्या काम करना है? घरवालों को मैंने इसलिए भी मना लिया। बचपन से ही मेरा सपना था कि मेरी जमीन हो, अपना घर हो, खूब सारा पैसा हो, और मैं किसी के अधीन न रहूं। पर मन में कहीं एक इच्छा यह भी दबी कि पैसा कमाने के साथ-साथ लोगों की सेवा भी कर सकूं। अक्टूबर 2004 को मैं 'जुड़ाव' से जुड़ी। निर्मला दी ने बोला तुम को मधुपुर जाना पड़ेगा। मैं अकेले ही दो दिवसीय प्रशिक्षण के लिए मधुपुर के लिए निकल गई। उस बैठक में वर्ल्ड सोशल फोरम का मूल्यांकन किया गया। काला डुमरिया में कार्यकर्त्ता क्षमतावर्द्धन कार्यशाला में हमें अपने कार्यों के बारे बताया गया। गांव जाकर लोगों से

संपर्क करना है। संपर्क के लिए किन व्यक्तियों से सहयोग लेना है। ग्रामीणों के साथ कैसे बात करनी है ग्रामसभा बैठकों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ानी है इत्यादि। मैं 'जुड़ाव' से जुड़कर ग्राम सभा सशक्तिकरण का कार्य करने लगी। 'जुड़ाव' से उस समय मानदेय के रूप में 2000 रुपये मिलते थे। इतना आर्थिक सहयोग भी मेरे लिए काफी संबल का काम किया। 2004 से 2009 तक 'जुड़ाव' में कार्य करने के दौरान मैंने अनेक कार्यशाला, बैठकों एवं प्रशिक्षण शिविर में भाग लिया जिससे मेरे आत्मविश्वास में बढ़ोत्तरी हुई। पहले किसी के सामने अपना नाम पता बताने में हिचकती थी, कहीं अकेले आ-जा नहीं सकती थी परंतु, 'जुड़ाव' से जुड़ने के बाद मेरी क्षमता में विकास हुआ। मैं 'जुड़ाव' में कार्य के दौरान ही पहली बार ट्रेन पर चढ़ी। जब मैं दिल्ली, रांची एवं अन्य जगहों पर बैठक या प्रशिक्षण के लिए जाती तब आस पड़ोस के लोग बहुत ताना मारते थे कि यह दो दिन रात घर से बाहर रहती है इसका चाल चलन व्यवहार खराब हो गया है। लोग हरदम खरी-खोटी बात सुनाते थे। मेरे सास ससुर भी उनकी बातों को मानकर कहने लगे इसे घर में नहीं रखेंगे। घर का कुछ काम तो करती नहीं है केवल आवारा की तरह बाहर घूमते रहती है। उस समय मेरे पति ने काफी महयोग किया। अपने मां पिताजी को समझाया कि 'जुड़ाव' अच्छी संस्था है यह आदिवासी एवं वंचितों के हक अधिकार के लिए कार्य करती है। मेरे कार्य करने के लिए उन्होंने अपने मां पिताजी को राजी किया। आज यदि मैं काम कर पा रही हूं तो पति और मां के सहयोग के बल पर। मां मेरे बच्चे को पालने से लेकर अन्य कार्यों में भी मेरा सहयोग करती रही। 'जुड़ाव' हमेशा से ही लोगों के हक अधिकारों को लेकर कार्य करता था। वर्ष 2007 में काठीकुंड और शिकारीपाड़ा प्रखंड के 25 गांवों को उजाड़कर पावर प्लान्ट लगाने की बात जैसे ही ग्रामीणों को पता चली, ग्रामीण इसके विरोध में आ गये और धरना प्रदर्शन करने लगे। मैं भी ग्रामीणों को साथ देने के लिए धरना प्रदर्शन में शामिल होने लगी। अगुवाई करने वाले दो साथी को गिरफ्तार किया गया था। उन साथियों की रिहाई की मांग को लेकर 8 दिसंबर 2008 को ग्रामीण शांतिपूर्ण प्रदर्शन कर रहे थे। सभी लोग आमगाछी पोखरिया से काठीकुंड थाना की ओर जा रहे थे। काठीकुंड थाना से 2 किलोमीटर पहले ही पुलिस ने भीड़ को रोकने के लिए आंसू गैस छोड़े। उस रैली में मैं भी शामिल थी। आंसू गैस छोड़े जाने से भीड़ थोड़ी देर के लिए तितर बितर हुई और फिर जेल भरो अभियान कार्यक्रम को लेकर थाना की ओर बढ़ने लगी कि अचानक से पुलिस ने ग्रामीणों पर अंधाधुंध फायरिंग शुरू कर दी। पुलिस की गोली से लखीराम टुडू नामक व्यक्ति की मौत वहीं पर हो गई। फिर साइगत मरांडी के सीने में गोली लगी। शिवलाल सोरेन के आँख में जाकर गोली फंस गई। कईयों को गोली छूकर निकल गयी। लखीराम की लाश सहित साइगत एवं शिवलाल को पुलिस ने अपने कब्जे में ले लिया। घायल होने के बावजूद उन्हें बेड़ी में बांधकर रखा गया। फायरिंग के बाद भीड़ तितर बितर हो गई। प्रशासन द्वारा 24 लोगों को नामजद अभियुक्त बनाया गया। नामजद में मैं भी थी। पुलिस हमें पकड़ने के लिए पागलों की तरह ढूढ़ रही थी। उस समय मेरा बेटा 4 साल का था। मां के पास छोड़कर मैं छुपती फिरती थी। चूंकि आमगाछी पोखरिया में पुलिस ग्रामीणों के कारण घुस नहीं पाती थी। अतः वहां 3 माह छुपकर रही। वहां भूखे भी रहना पड़ता था और आदत भूखे रहने की नहीं थी। किसी तरह माड़पानी पीकर रहती। इस केस में 8 वर्ष के बाद हमें जीत मिली। अंतरिम जमानत मिलने के बाद फिर से क्षेत्र में कार्य करने लगी, परंतु सरकार ने 'जुड़ाव' का निबंधन रद्द कर दिया। वह समय काफी संघर्षपूर्ण रहा जो भी मानदेय मिलता था वह भी बंद हो गया। करीब 7-8 माह आर्थिक तंगहाली के थे क्योंकि मानदेय इतना भी नहीं मिलता था कि उसमें से बचत कर सकूं।

फिर वर्ष 2010 से 'संवाद' के साथ जुड़कर कार्य करने लगी। गांव समाज के लिए कार्य करने से मन को शांति मिली। क्षमता विकास कार्यशालाओं में भाग लेकर अपना क्षमता विकास करती और वहां से जो सीखकर आती उसे ग्रामीणों को बताती। ग्रामीणों का आधार कार्ड बनवाने, पेंशन दिलवाने, बैंक में खाता खुलवाने में मदद करती। ग्राम सभा बैठकों में महिला सक्रिय भागीदारी निभाये इसके लिए निरंतर उनके साथ संपर्क कर उन्हें जागरुक करने का कार्य करती रही। आपसी विवाद एवं पारिवारिक झगड़ों का

निपटारा भी ग्रामसभा में हो इसका प्रयास करती हूं। आज अपने कार्य की बदौलत मेरी एक पहचान बनी है। विभिन्न मंचों से अपनी बातों को रखना, सभी जगह (राज्य या राज्य से बाहर) जाना यह संस्था के प्रयासों का ही परिणाम है। हाँ जितना कार्य मैं करती हूं उसका दस्तावेजीकरण ठीक ढंग से नहीं हो पा रहा है। वर्ष 2011 में मेरे पति का देहान्त हो गया उस समय मेरा बेटा 5 वर्ष का था तब से लेकर आज तक बेटे को अकेले पाल रही हूं। एक अकेली माँ को बच्चा पालना कितना कष्टकारी है वह केवल एक माँ ही बता सकती है। इतना होने के बावजूद मैं अपनी जिम्मेवारी से कभी पीछे नहीं हटी। न बच्चे की पढ़ाई लिखाई में बाधित होने दिया, न ही संस्था के कामों में कोताही की। पंचायत कार्यकर्त्ता से मैं अब फील्ड सुपरवाइजर बनकर पांच प्रखंडों में साथियों के साथ मिलकर कार्य कर रही हूं। 'संवाद' के पहल से बने राज्य ग्राम सभा फेडरेशन में राज्य संयोजिका के रुप में भी चुनी गई हूं। आज मेरी पहचान समाज में तो बनी ही है अन्य जगहों में भी अपनी पहचान बनाने में सफल हो रही हूं। इतना सब कुछ हो पाया है तो संस्था के संबल से ही हाँ। परिवार का सहयोग भी मेरी यात्रा को आगे बढ़ाने में मदद किया है। आगे भी हर संभव कोशिश करती रहूँगी। मेरी मदद से यदि वंचितों को उनका हक अधिकार दिला सकूं तो ही मेरी जीवन की सार्थकता होगी। ■

नदियों की तरह संघर्ष करती सरिता

सरिता मुर्मू

"निर्णय करने की भूमिका में अभ्यास न होने के कारण महिलाओं को अपनी जिम्मेदारियां पूरी करने में काफी कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। इस कमजोरी को दूर करने के लिए ऐसे उपायों की जरूरत है जो उनकी नेतृत्व क्षमता को मजबूत करने और सार्थक बनाने में सहायक हो। यह संशय आधारहीन नहीं है कि महिलाओं का विकास एवं उत्थान मात्र उसके स्वचेतना संपन्न होने से संभव नहीं हैं। पुरुष मानसिकता और उसके सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन आए बिना महिलाओं के स्वतंत्र समर्थ व्यक्तित्व को पुरुषों द्वारा स्वीकारे बिना सामाजिक कूपमंडूक परिदृश्य बदलनेवाला नहीं।"

मैं सरिता मुर्मू निम्न वर्गीय परिवार से हूं। मेरे पिताजी एक छोटे किसान हैं। मुझसे छोटी मेरी एक बहन है। मेरे जन्म होने के पांच साल बाद ही मेरी माता इस दुनिया से गुजर गई। उस समय मैं 5 साल की थी और मेरी बहन डेढ़ वर्ष की थी। मां के गुजर जाने के बाद पिताजी अकेले परिवार चला रहे थे। परिवार में कुल 5 सदस्य थे। दादा, दादी, पिताजी और हम दोनों बहनें। एक समय ऐसा हुआ कि अकाल पड़ने के कारण धान की रोपाई नहीं हुई और खाने के लिए घर में कुछ नहीं था। हमलोग मकई का भात खाकर पले पढ़े। जब मैं 6 वर्ष की हुई तो विद्यालय जाना शुरू किया। हमलोग विद्यालय जाते तो थे ही, लेकिन साथ-साथ दूसरे के खेत में सहयोग के लिए काम करने जाते थे। वहां पर काम करते-करते पढ़ाई के साथ-साथ काम भी सीखते थे और अपनी पढ़ाई के लिए खर्च भी निकालते थे। मैं छः क्लास में अपना नामांकन कराना चाहती थी, लेकिन आर्थिक तंगी के कारण उस बार छः क्लास में भर्ती नहीं करा पाई। एक साल घर पर ही रही फिर भी हार नहीं मानी। दूसरे साल खेतों में बहुत मेहनत किये और पढ़ने के लिए फिर से विद्यालय में भर्ती हुई। मैंने घर का सारा काम, अपनी छोटी बहन की देखभाल सब कुछ करके विद्यालय जाती थी। जब मैं नवम् वर्ग में पहुंची तो मैंने भी कोचिंग क्लास करने की सोची, और मैंने विद्यालय में प्रधानाध्यापक को

अपना स्थिति बताकर एक आवेदन लिखा, कि मैं क्लास में रोज उपस्थित नहीं रह पाऊंगी। प्रधानाध्यापक ने मेरे आवेदन को स्वीकार कर लिया। मैं सप्ताह में चार दिन विद्यालय में उपस्थित नहीं होती थी और उन दिन मैं पोल फैक्ट्री में काम करने जाती थी। जब मैं मैट्रिक की परीक्षा दे रही थी तभी मेरी दूसरी मां और उसका बेटा यानी मेरे भाई का देहान्त, मेरे गणित परीक्षा के दिन ही हुआ था। मुझे बहुत ही दुःख हुआ कि मेरा एक ही भाई था। लेकिन पिताजी हिम्मत करके मेरे गांव के मामा के बेटा के साथ मुझे परीक्षा देने के लिए भेजा। इस तरह के घटना घटने के बावजूद भी मैं अच्छे नंबरों से उत्तीर्ण हुई। जब मैं उत्तीर्ण हुई थी तब मुझे भी मालूम नहीं था कि मैं उत्तीर्ण हुई हूं। क्योंकि मैं हर रोज अपने पिताजी का हाथ बंटाने के लिए फैक्ट्री पर काम करने जाती थी। फैक्ट्री की देख-रेख करने वाले मुंशी जी ने मुझसे पूछा कि तुमने मैट्रिक की परीक्षा लिखी थी उर्त्तीण हुई कि नहीं। मैंने उत्तर दिया था कि नहीं पता और उसी ने मेरे पिताजी को बता दिया और मेरे पिताजी बहुत खुश हुए। मैंने संथालपरगना महाविद्यालय में नामांकन लिया। मैं साईकिल से आना-जाना करती थी।

शादी से पहले पढ़ाई के साथ-साथ मैं सिलाई भी सीखती थी। विद्यालय जाने से पहले सिलाई सीखने के लिए घर से सुबह 6:30 बजे निकलती थी। सिलाई सीखने के बाद मैं घर पर ही लोगों के कपड़े सिलाई करके अपना खुद का खर्च निकालती थी। अचानक मेरी शादी की बात घर पर चलने लगी थी, लेकिन मैंने खुद शादी करने से मना कर दिया था। मैंने मना कर दिया, तो मेरी बहन की शादी कर दी गई। मुझे बहुत दुःख हुआ, क्योंकि मेरी बहन की उम्र उस समय बहुत कम थी। मैं रोज गांव से बाहर मैदान में जाकर बहुत रोती थी। मैंने हार नहीं मानकर फिर से पढ़ाई करना शुरू किया। पढ़ाई शुरू करने के बाद जब मैं 12वीं क्लास में पहुंची तो मेरी तबीयत खराब हो गयी और घर से बाहर निकलना भी कठिन हो गया। मेरी कोई भी बीमारी, विद्यालय के परीक्षा के समय ही इतनी कठिन मुसीबत लेकर आती कि मैं पढ़ना ही छोड़ देना चाहती थी। अनेक प्रकार की मुसीबत से निपटने के लिए मैंने हिम्मत नहीं छोड़ी और हार भी नहीं मानी। लेकिन घर वालों ने मेरी शादी तय किया और मेरी शादी करने के लिए ससुराल वालों में खुद मेरी सास ने मुझे पसंद किया और शादी का सारा खर्च भी उठाया। शादी तो हो गयी लेकिन ससुराल जाने के बाद मेरी पढ़ाई में बाधा आ गई। मेरा जीवन साथी तो अच्छा था लेकिन सास ने घर का सारा काम मेरे ऊपर डाल दिया। मैं घर का काम करने में इतनी व्यस्त हुई कि कब दिन होता था, कब रात होता था पता नहीं चलता था। बाद में मैंने पढ़ाई छोड़ दी और घर के काम एवं खेती बाड़ी का काम करना शुरू किया। घर का काम करते - करते मेरे देवर की शादी का बोझ आ गया। दोनों देवर की शादी करने का खर्चा उठाकर शादी करवायी और अपनी जिम्मेदारी से मुक्त हो गयी। हम सब अपना जीवन यापन करने के लिए सब मिलकर खेती और घर का काम करते थे।

मैं थोड़ी पढ़ी - लिखी थी अतः हमारे गांव से एक किलोमीटर की दूरी पर स्थित प्राथमिक नर्सरी विद्यालय में नर्सरी से पंचम वर्ग तक विद्यालय में पढ़ाने लगी। विद्यालय में काम करने के दौरान मैंने कुछ पैसा जमा किया। इसी पैसे से मैंने एक सिलाई मशीन खरीद ली। विद्यालय से लौटने के बाद घर के सारे काम को खत्म करके मैं कपड़ा सिलाई करती थी।

2016 में मैं दिल्ली द्वारा संचालित संस्था का एक सिलाई सेंटर को चला रही थी। उसमें 20 से 22 किशोरियों को सिलाई का प्रशिक्षण दिये। उन लड़कियों और बहुओं में से कुछ लड़कियां मशीन नहीं खरीद पाने पर भी अपने हाथों से सिलाई कर बच्चों के लिए फ्रॉक और पैंट बनाती हैं। यह देखकर मुझे बहुत अच्छा लगा कि गांव के प्रति कुछ काम किये और अपने अन्दर आत्मविश्वास भी आया।

इस संस्था का काम समाप्त होने के कुछ दिन बाद फिर से 'तेजस्वनी' संस्था से जुड़कर किशोरियों के सशक्तिकरण पर कार्य करना शुरू किया। 'तेजस्वनी' संस्था में कई किशोरियों को शिक्षा से जोड़ पाये और छूटे हुए किशोरियों को रोजगार से जोड़ने पर कार्य करते थे। इस संस्था का कार्य भी मुझे अच्छा लगता था। उस

संस्था में कार्य करते-करते मेरे अंदर शिक्षा के प्रति फिर से रूचि पैदा हुई। काम करते-करते आस-पास के गांव में भी मेरी जान-पहचान बढ़ गयी और घर से बाहर निकलने का मौका भी मिला। गांव के ग्रामीणों से भी अच्छा मेल-मिलाप रहा।

एक दिन 'संवाद' की कार्यकर्त्ता ऐनी टुडू ने हमारे गांव में प्रोग्राम रखा। जब ऐनी टुडू, सुनीता मुर्मू तथा श्रीकृष्ण दादा हमारे गांव में आये और गांव का नक्शा बनाने को कहा। मुझे पहली बार गांव का नक्शा बनाने का मौका मिला था और मुझे मालूम नहीं था कि गांव का नक्शा कैसे बनाया जाता है। वहीं पर मैं गांव के नक्शे के बारे में सीखा। मैं मन ही मन सोचती थी कि मैं भी गांव के वंचित परिवार या गांव-गांव में काम करूं, क्योंकि पढ़ाई के समय से ही मेरा सपना था कि गांव के बीच काम करें।

फिर एक दिन 'संवाद' के कार्यकर्त्ता ऐनी टुडू ने हमारे गांव की सेविका के द्वारा हमसे फोन में बात करके 'संवाद' संस्था में काम करने को कहा। मैं कभी भी घर से बाहर काम करने के लिए नहीं निकली थी। क्योंकि घर से बाहर निकलने में मेरे पति मना करते थे। लेकिन मैं उन्हें समझा-बुझा कर पहली बार घर से बाहर 'संवाद' ऑफिस 52 बीघा मधुपुर, में ऐनी टुडू के साथ गयी थी। गाड़ी में मुझे बहुत दिक्कत होती थी क्योंकि मैं बहुत उल्टी करती थी लेकिन फिर भी मैंने ऑफिस में आकर 'संवाद' के कार्य को समझा और काम करने के लिए सहमत हुई। ऑफिस में सारा कुछ संपर्क बातचीत करके घर आ गये।

संस्था की यात्रा

1 अक्टूबर, 2018 से मैंने 'संवाद' संस्था में जुड़कर काम करना शुरू किया और गांव में जाकर ग्राम प्रधान से एवं ग्रामीणों से संपर्क करके सबसे पहले अपना परिचय दिया। बाद में धीरे-धीरे सभी ने मुझे जाना और परिचय का क्षेत्र बढ़ा। पहले मैं ग्रामसभा के बारे में उतनी अच्छी तरह से नहीं जानती थी। लेकिन संस्था में आकर ग्रामसभा के बारे मैं जानने सीखने का मौका मिला। गांव जाती तो थी लेकिन गांव वाले भी कुछ-कुछ सवाल करते थे, मैं उन सवालों का जवाब नहीं दे पाती थी तो अपनी सुपरवाईजर ऐनी टुडू को बुलाती थी। पहले काम तो करती थी लेकिन उतनी गहराई से काम करने का तरीका नहीं जानती थी। 'संवाद' संस्था के माध्यम से लोगों को जागरूक करने का काम शुरू किया। 3-4 महीना तक सिर्फ संपर्क और बातचीत करते-करते लोगों से मेरा अच्छा संबंध बना और मैं ग्रामीणों की मदद करने लगी। मुझे थोड़ा डर भी लगता था कि गांव के ग्राम प्रधान, गोडित, नायकी अन्य लोगों से बात कर पाऊंगी कि नहीं! लेकिन धीरे-धीरे काम करते-करते ग्राम प्रधान भी मेरी बातों को समझने लगे। मैंने सबसे पहले महिलाओं को सशक्त करने पर कार्य शुरू किया। क्योंकि गांव की महिलाएं ग्राम सभा बैठक में शामिल नहीं होती थी। महिलाओं को बैठक में आने की पाबंदी थी, और पुरुष लोग ही बैठक कर प्रस्ताव बनाकर गांव की महिलाओं से घर में जाकर हस्ताक्षर करवाते थे। लेकिन मैंने गांव के महिलाओं को ग्राम सभा बैठक आने के लिए विस्तार से समझायी और अपना प्रस्ताव को रखने को भी समझायी।

गांव की महिलाएं अपने गांव के अंदर के आंगनबाड़ी केन्द्र में अपने बच्चों की सुरक्षा के लिए टीकाकरण भी नहीं कराती थीं। लेकिन मैंने सेविका से संपर्क किया, और टीकाकरण के दिन महिलाओं को टीकाकरण के बारे में समझाया कि गर्भवती माता एवं शिशु को क्यों टीकाकरण लेना या करवाना आवश्यक है। अब गांव की सभी गर्भवती महिलाएं अपने से जाकर आंगनबाड़ी में रजिस्ट्रेशन करा रहीं हैं। सबसे ज्यादा कुपोषित बच्चों की चिंता भी होती थी। कुपोषित बच्चों के माता-पिता से मिलकर सेविका, सहिया और मैं सबों को समझाती थी और मां तथा बच्चे को अस्पताल ले जाने में सहयोग भी करती थी।

संस्था से जुड़कर काम करते-करते मैं सरकारी योजनाओं को भी जानने लगी और लोगों को सरकारी योजना का लाभ दिलाने में सहयोग कर पा रही हूं। संस्था से जुड़कर संस्था के द्वारा सरकारी योजना, स्वास्थ्य एवं स्वच्छता, शिक्षा को लेकर गांव-गांव जाकर प्रचार - प्रसार

करके लोगों को जागरूक करने के लिए काम करने का मौका मिला। संस्था में आकर जनप्रतिनिधि के साथ अपनी पहचान बढ़ाने में संस्था ने हमें सहयोग दिया है। संस्था में जुड़ने से मेरे अंदर क्षमता आई है कि मैं किसी भी पदाधिकारी से बात करने का साहस जुटा पाती हूं। संस्था में जुड़कर मेरे परिवार की आर्थिक स्थिति में भी सुधार हुआ है। संस्था से जुड़ने से पहले मैं अपने आप को बहुत ही कमजोर महसूस करती थी, लेकिन आज मुझे संस्था में काम करने से बहुत सारे कार्य करने की जानकारी प्राप्त हुई है।

पहले भी दूसरी संस्थाओं में कार्य करती थी, लेकिन उतनी जानकारी प्राप्त नहीं हुई थी जितनी कि 'संवाद' में जुड़ने से प्राप्त हुई। संस्था से जुड़ने से मुझे दूर-दूर तक सफर करने का मौका मिला, तथा अन्य जिलों के लोगों से मिलने, बातें करने और जानने का मौका मिला। एक-दूसरे के साथ बातचीत करने से और अच्छा काम करने का मौका (सीख) मिला। संस्था से जुड़ने या काम करने से लोगों के बीच गांव में ग्रामीण तथा माझी हड़ाम, गोडेत, नायकी और अन्य लोगों के बीच भी काम करने का मौका मिला।

आज मुझे लगता है कि मेरा सपना पूरा होने लगा क्योंकि मैंने पढ़ाई के साथ-साथ अपने मन में जो मकसद रखा था कि मुझे समाज के अन्दर वंचित वर्गों के लिए काम करने का मौका मिले और मैं आज उसी जगह पर खड़ी हूं। मैंने अपना मकसद (सपना) तीन चीजों में रखा था - नर्स, टीचर या समाज सेवी। लेकिन मेरा सपना सभी चीजों में पूरा हुआ, मैंने सभी तरह के काम किये, लेकिन मैंने अंतिम में एक ही को चुना। वो है - संस्था। संस्था को इसलिए चुना कि इसके द्वारा मैं सभी वंचित लोगों की मदद कर सकती हूं। आज गांव के महिलाओं, पुरुषों एवं बच्चों के बीच कार्य करने में अच्छा लगता है क्योंकि अब कोई भी ग्रामीण सदस्य किसी भी जरूरत, आवेदन या कोई भी लाभ पाने के लिए मुझसे बाते करते हैं, और सलाह भी लेते हैं। मैं बेहिचक उनकी मदद करने को तैयार रहती हूं। जहां तक मैं कर सकती हूं करती हूं। आज मुझे गर्व है कि मेरे संस्था में काम करने से मुझे गांव के ग्रामीण 'दीदी' कहकर बातें करते हैं।

संस्था से जुड़कर शुरू से अभी तक आने - जाने में किसी भी तरह की दिक्कतें नहीं आयीं हैं। किसी भी गांव में जाती हूं तो वहां के लोग मुझे सम्मान देते हैं। कार्यक्षेत्र में एस.एच.जी. समूह की महिलाएं भी मुझे अपनी दिक्कतें बतलाती हैं, तो उसका भी समाधान करती हूं। उन्हें उनके रजिस्टर को लिखने में भी मैं सहयोग करती हूं। संस्था से जुड़कर मुझे बहुत सारे काम करने एवं सीखने का मौका मिला है और मुझे लगता है कि संस्था में जुड़े रहो तथा सारे कार्य को करते रहो और सीखते रहो।

समाज के लिए

आज मैं समाज के लिए बहुत कुछ करना चाहती हूं, जैसे कि गांव के जितने भी बेरोजगार हैं, उनको रोजगार से जोड़ने में मदद कर सकूं। ताकि वे अपने परिवार की आर्थिक स्थिति में सुधार कर पायें। गांव के महिलाएं जो चौक-चौराहे पर हड़िया, शराब बेचती हैं, उससे मुक्त होने एवं दूसरा कार्य करने के लिये प्रेरित करना चाहती हूं क्योंकि इस तरह (दारू) शराब बेचने से महिलाओं का मान-सम्मान एवं इज्जत नीचे ही रहता है। उनके बच्चों एवं परिवार के मुखिया को इसके बारे में जागरूक करना चाहती हूं। समाज के लिए आदिवासियों को अपनी पहचान को बनाये रखने में मदद करूंगी। आज के दिन में गांव के युवक- युवतियों को अपनी परंपरागत संस्कृति को बनाये रखने में सहयोग करूंगी।

संस्था के द्वारा कार्य करने से गांव से पंचायत तक मेरी पहचान बढ़ी है। दूसरे प्रखण्ड के कुछ गांव में भी मेरी पहचान हो गई है। लेकिन समाज के आधार पर भी कार्य करने के लिए मुझे और संघर्ष करना पड़ेगा। कोई जनप्रतिनिधि बनकर समाज में कार्य करने की मेरी कोशिश भी है, लेकिन उसके लिए मुझे गांव से पंचायत तक लोगों के बीच कार्य करना होगा। समाज में काम करना तो बहुत ही कठिन है लेकिन उस कठिनाई को ध्यान में न रखते हुए कार्य करने पर ही अपनी मंजिल तक पहुंच सकते

हैं। इसलिए किसी तरह की ठोकर या परेशानी ग्रामीणों या परिवारों के द्वारा आने पर उससे ध्यान हटाकर सभी लोगों से अच्छा व्यवहार होने पर ही समाज में काम कर सकते हैं। संस्था में आने के बाद मेरे अन्दर की कमजोरी दूर हुई है। और 'संवाद' संस्था में काम करते-करते मेरे अंदर समाज के लिए काम करने के लिए एक नई प्रेरणा जागृत हुई है जो कि मैंने कभी सोचा नहीं था। संस्था में काम करते-करते मुझे अनुभव हुआ कि मुझे और नयी-नयी चीजों को जानने एवं उससे समाज हित में काम करने का मौका मिलेगा। ■

अंधेरे को दूर भगाती मैं पूर्णिमा हूं!

पूर्णिमा बिरुली

''आदिवासी समाज मूलतः खेती पर आधारित समाज रहा है। खेती के साथ-साथ इनकी आजीविका जंगल पर भी निर्भर है। इसलिए यह समाज श्रमनिष्ठ है। यहां श्रम का सम्मान है। कोई भी कार्य छोटा या बड़ा नहीं होता है। परंतु बाहरी समाज के प्रभाव के कारण मानसिकता में बदलाव आया है। कुछ कार्य को सम्मानजनक समझा जाता है। कुछ कार्य को करने में लोग हिचकिचाते हैं अर्थात शर्म महसूस करते हैं। आज की युवा पीढ़ी जो थोड़ा पढ़ लिख जाते हैं वे खेती किसानी को हेय दृष्टि से देखते हैं जबकि ऐसा नहीं है। खेती किसानी से भी आजीविका सम्मानजनक तरीके से चल सकती है, यह मैंने ससुराल आकर जाना समझा।''

मैं पूर्णिमा बिरुली पश्चिम सिंहभूम के तांतनगर प्रखंड के चिटीमिटी गांव की रहने वाली हूं। मेरा जन्म कोकचो गांव में एक हो आदिवासी परिवार में हुआ। मेरी मां का नाम जोंगा कालुन्डिया एवं पिता का नाम मानकी कालुन्डिया है। मेरी प्राथमिक शिक्षा कोकचो गांव के स्कूल में हुई। इंटर की पढ़ाई चाईबासा से की। उसके बाद मेरी शादी हो गयी। मेरे पति किसान हैं। धान की खेती के साथ-साथ मत्स्यपालन, मुर्गीपालन करते हैं। उन्होंने फलदार वृक्ष भी लगाया है एवं जलावन हेतु पौधे भी लगाया है। वे एक छोटी सी दुकान भी चलाते थे। जब शादी होकर मैं ससुराल आई तो उस दुकान की देखरेख की जिम्मेवारी मुझे मिली। दुकान चलाने के साथ-साथ सब्जी बेचती, जलावन लकड़ी बेचती। आम इत्यादि फल को जब चाईबासा बाजार ले जाकर बेचना पड़ता तो मुझे बहुत हिचकिचाहट एवं शर्म महसूस होती थी। मायके में मैंने यह सब काम नहीं किया था। उस समय मेरे पति ने मुझे समझाया और सर्पोट किया कि अपने काम को करने में क्या शर्माना। कोई भी काम छोटा या बड़ा नहीं होता। हां, गलत काम नहीं करो। हिम्मत से काम लो। परिवार के लिए मेहनत करना, पैसा कमाना कोई बुरी बात नहीं है। उस समय को जब याद करती हूं तो लगता है आर्थिक स्वावलंबन की राह में वह मेरी पहली सीढ़ी थी। जब मैं बाहर निकलने लगी तो गांव समाज को समझने लगी। पहले ग्रामसभा क्या है, यह नहीं जानती थी। धीरे-धीरे पति के सहयोग से आगे बढ़ने लगी। ग्रामसभा की बैठकों में जाने लगी। वहां के चर्चाओं में भाग लेने लगी और देश दुनिया की खबरों को जानने लगी। वर्ष 2016 की बात है। एक दिन एक दीदी मेरे घर आयी और बोली क्या तुम ग्राम सभा सशक्तिकरण का कार्य करोगी? मैंने उन्हें तुरंत हां कर दिया पर उसने कहा तुम्हारे परिवार वालों से भी बात करना जरूरी है। इसलिए तुम्हारे घर आऊंगी। दूसरे दिन वे लोग मेरे घर आये। मैंने अपने पति को इन सब बातों

को पहले ही बता दिया था। उन्होंने भी कार्य के लिए हां बोल दिया। इसके बाद मैं बैठक के लिए मधुपुर पहुंची। बैठक में मुझे क्या कार्य करना है? कैसे करना है? इन सब बातों को जाना, समझा। बैठक से लौटने के पश्चात कार्य क्षेत्र में जाकर लोगों से संपर्क करने लगी। उनसे परिचय बढ़ाने लगा। फिर सभी के सहयोग से कार्य करने लगी। मैं लोगों को खासकर महिलाओं को ग्राम सभा बैठकों में सक्रिय भागीदारी निभाने के लिए उत्प्रेरित करती। अब तो महिलायें बैठकों में आती हैं और अपनी बातों को रखती है। प्रस्ताव यदि ठीक रहा तो समर्थन या गलत लगा तो विरोध भी करती हैं। अब क्षेत्र की महिलायें जागरूक हुई हैं। जागरूकता आने से वे संगठित होने लगी हैं और अपने गांव समाज की समस्याओं को सुलझाने भी लगी हैं।

मुझे संस्था में काम करना बहुत अच्छा लगता है। संस्था में कार्य करने पर पैसे के साथ-साथ सम्मान भी मिलता है। किसी को सर या मैडम नहीं बोलना पड़ता है। बड़ों को दादा या दीदी, छोटे एवं हमउम्र को नाम से पुकारते हैं। विभिन्न धर्म जाति के होते हुए भी सभी में एकता है। सब लोग 'जोहार' बोलकर एक दूसरे का अभिवादन करते हैं। संवाद संस्था द्वारा महिला सशक्तिकरण, ग्राम सभा सशक्तिकरण, टिकाऊ आजीविका, बाल अधिकार, आदिवासी संस्कृति एवं परंपरा के संरक्षण-संवर्द्धन का कार्य किया जाता है। किसानों को आगे बढ़ाने के लिए उन्हें प्रशिक्षित किया जाता है। कॉपरेटिव रजिस्ट्रेशन के दौरान मुझे बहुत सी नयी जानकारी मिली। सहकारिता विभाग चाईबासा बार-बार जाना पड़ा। अधिकारियों से बातचीत करना पड़ता था। इससे मेरे मन का झिझक टूटा। किसान लोग भी हमें बहुत सहयोग किये। अभी 105 सदस्यों का हमारा कॉपरेटिव बनकर तैयार है जिसके अंतर्गत हम धान, आलू का व्यवसाय कर रहे हैं।

संस्था से जुड़ने के बाद मेरे जीवन में बहुत परिवर्तन आया है। मैं पहले भी पैसा कमाती थी, परंतु उस समय मेरी पहचान नहीं थी। संस्था से जुड़ने के बाद गांव समाज में पहचान बनी। जानकारी एवं ज्ञान का विकास हुआ। आत्मविश्वास में बढ़ोत्तरी हुई। अब कहीं भी अकेले आ जा सकी हूं। किसी भी मंच से अपनी बातों को रख सकती हूं। परंतु महिला होने के नाते परिवार एवं बच्चों की जिम्मेदारी भी संभालनी पड़ती है, तब मन में सवाल उठता है कि महिलाओं के जिम्मे ही परिवार एवं बच्चों की जिम्मेवारी क्यों? एक घटना का जिक्र मैं यहां करना चाहूंगी। मधुपुर बैठक के दौरान मेरा बेटा जो उस समय दो साल का था। मेरे साथ ही मधुपुर आया था। बैठक समाप्ति के बाद हम कमरे में थे। बेटा खेल रहा था और मैं कपड़ा सुखाने के लिए आंगन के तरफ गयी थी तभी अचानक से बेटा ने मां कहकर मुझे पुकारा। जैसे ही मैंने उसे देखा तो मेरी चीख निकल पड़ी। मेरा बेटा का सिर बॉलकनी में फंसा हुआ था। मेरी चीख सुनकर अन्य साथी अपने-अपने कमरे से निकले और बेटा को निकलवाने की कोशिश करने लगे। मैं भी वहां पहुंच चुकी थी। सभी के सहयोग से बेटा सुरक्षित निकल गया। मैं सोचने लगी थोड़ी देर के लिए मैंने बेटा को छोड़ा तो यह घटना घटी। अगर कुछ बड़ी घटना घट जाती तो लोग मुझे ही जिम्मेवार मानते। हम जैसी हर महिलाओं को घर की छोटी छोटी जिम्मेवारी से लेकर बड़ी जिम्मेवारी को बहुत ही सावधानी के साथ करना पड़ता है। जिम्मेवारी निभाने में अगर हम सफल रहते हैं तो हमें वाहवाही नहीं मिलती है पर अगर थोड़ी सी भी चूक होती है तो लोगों की बातें सुननी पड़ती है। लोग ताने भी देते हैं। इन तानों और बातों से न मैं विचलित हुई और न ही मैंने हिम्मत हारी, बल्कि दोगुने जोश के साथ संस्था का कार्य करती रही।

मेरी इच्छा है कि आगे भी मैं संस्था का कार्य करती रहूं, अपने समाज को आगे बढ़ाती रहूं। महिला-पुरुष, किशोर-किशोरी, बड़े-बुजुर्ग सभी को जागरूक होना होगा। सभी के सम्मिलित प्रयास से अपनी भाषा, संस्कृति, परंपरा, रीति-रिवाज, प्रकृति एवं खेती को बचाना होगा। जल, जंगल और जमीन का संरक्षण संवर्द्धन करना होगा। जब ये सारी चीजें बचेंगी तभी हम बचेंगे और हमारा समाज एवं परिवार बचेगा। समाज एवं परिवार बचेगा तभी तो पर्यावरण एवं प्रकृति की हिफाजत होगी तथा श्रम को सम्मान मिलेगा। ■

नई राहें मांगती हैं महिलाएं

ललिता

''आज जब महिलाओं में साक्षरता की दर में 40 प्रतिशत की वृद्धि हुई है, महिलाएं पहले से अधिक अपनी समस्याओं के प्रति जागरूक हुई हैं। वे घर की चाहरदीवारी से निकलकर बाहर के हर क्षेत्र में मुस्तैदी से अपनी पहचान बना रही हैं। अतः सिर्फ महिलाओं पर अत्याचार और शोषण की ही बात करते रहना कहां तक जायज है? यह सवाल अक्सर जागरूक महिलाओं द्वारा भी उठाया जाता रहा है। इस सवाल का उत्तर ढूढ़ने से पहले एक आंकड़े की ओर ध्यान देना जरूरी है। हम महानगरों और छोटे शहरों में रहनेवाली जिन कामकाजी महिलाओं की बात करते हैं उनकी संख्या पूरे भारत में केवल दो प्रतिशत है। आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने या परिवार का खर्च खुद उठाने का सामर्थ्य रखनेवाली महिलाएं अपनी शर्तों पर जिंदगी बसर कर सकती हैं। पर अक्सर ऐसा देखा जाता है कि ऊंचे पदों पर कार्यरत महिलाएं भी अपने कार्यक्षेत्र के बड़े-बड़े फैसलों में निर्णायक भूमिका अदा करने में असमर्थ होती हैं। (जब तक कि वे खुद उस संस्था की मालिक या संचालक न हों) इन सभी में महिलाओं की भूमिका नहीं के बराबर दिखलाई पड़ती है। मेरी कहानी भी कुछ ऐसी ही है।''

सन् 90 के दशक की बात है, जब मैं घर पर ही रहकर काम करती थी। अर्थात् मैं एक घरेलू महिला थी। मैं यह सोचती थी कि मैं सही ढंग से कोई काम नहीं कर पाती हूं। उससे पहले मैं यह बता देना चाहती हूं कि मेरी शादी बहुत कम उम्र में हो गई थी। मेरा ससुराल का घर मिट्टी का था। मिट्टी का घर देखकर मेरी परेशानी और बढ़ गई थी। क्योंकि पर्व-त्योहारों से पहले उसे लीपना- पोतना, साफ-सफाई करना होता था। इसके लिए घर के बाहर से पानी ढोकर लाना पड़ता था। मैं खाना बनाने नहीं जानती थी पर मेरी सास मेरे कामों में बहुत मदद करती थी। खाना बनाने, घर की साफ-सफाई करने इत्यादि के लिए भी बाहर से पानी लाना पड़ता था। मेरी ननद और देवर बाहर कुएं से पानी लाने में मदद करते थे। मेरे पति अधिकतर घर से बाहर रहते थे। जब वे घर आते तो मैं डर जाती थी। पति और ससुर खाने बैठते तो मन में डर लगा रहता कि खाना ठीक बना है या नहीं। नमक ज्यादा होने पर पति इसके लिए बोलते, पर ससुर हमेशा मेरा पक्ष लेते और कहते कि कहां नमक ज्यादा है। मैं संतुष्ट हो जाती।

देखते-देखते मेरे तीन बच्चे हो गए। दो बेटे और एक बेटी। फिर एक दिन मेरे मन में यह सवाल आया कि आखिर मेरे पति जाते कहां हैं और क्या काम करते हैं? जब मैं उनसे पूछती तो वो जवाब देते कि तुम्हें ज्यादा चिंता करने की जरूरत नहीं है। मेरी चिंता इसलिए भी बढ़ जाती क्योंकि मुझे बच्चों को अकेला ही देखना पड़ता। हालांकि घर में सास-ससुर के रहने से मुझे मदद मिल जाती थी। वे जब भी घर आते तो उनके साथ उनके दो-चार मित्र हमेशा होते। उन सबों के लिए भी खाना मुझे बनाना पड़ता। सभी लोग खाना खाते और चले जाते। थोड़ी-बहुत पढ़ी लिखी होने के बावजूद मुझे उन लोगों की बात समझ में नहीं आती कि वे आपस में किस विषय पर बात कर रहे हैं। एक दिन मेरी बेटी ने कहा - मां मैं टाइपिंग सीखना चाहती हूं। तो मैं असंमजस में पड़ गई क्योंकि मुझे पता नहीं था कि टाइपिंग कहां सीखाते हैं। मैं कभी घर से बाहर नहीं निकली थी। एक-दो दिन में लोगों से पता करने पर मालूम हुआ कि संस्था में कुछ लोग टाइपिंग सिखाते हैं। यहीं पर मुझे संस्था के बारे में जानने और समझने का मौका मिला।

मुझे पता चला कि संस्था में लोग काम करने के लिए रखते भी हैं। घर से बाहर निकल कर काम करने के लिए जाने की इच्छा हुई। उसके बाद मैं एक परिचित संस्था वालों के पास गई तो वे मुझे एक फार्म देकर उसको भरकर आने को कहा। मैं फार्म भरना जानती नहीं थी, वहां के एक व्यक्ति ने मेरा फार्म भर दिया। फार्म लेकर मैं वहां के प्रशासकीय अधिकारियों के पास गई तो मुझे कुछ सवाल पूछकर रख लिया गया। मुझे ट्रेनिंग के लिए गांव जाना था। जब मैं यह बात अपने सास-ससुर को बतलाई तो वे लोग घर से बाहर मेरे काम करने पर राजी नहीं हुए। तब एक लड़की जो संस्था में कार्यरत थी, आकर मेरे सास-ससुर को समझाई तो वे मुझे गांव में काम करने के लिए भेजने को तैयार हो गए।

गांव में महिलाओं के साथ मीटिंग करते हुए मुझे बहुत कुछ सीखने को मिला। गांव में मैंने छः माह तक काम किया। गांव में रहने के बाद मैं घर आई और घर के काम-काज में मन लगाने लगी, पर मेरा मन हमेशा मुझे घर से बाहर काम करने के लिए प्रेरित करता। दूसरे संस्था में काम करते हुए मुझे लगा कि खुद की एक संस्था बनाई जाए जिसमें महिलाओं का एक संगठन हो। पर मेरे बच्चे इतने बड़े नहीं हुए थे कि उन्हें छोड़कर अपना पूरा समय संस्था में लगाया जाए। क्योंकि एक संस्था को खड़ा करने के लिए अपना अधिकांश समय उसके कार्य योजना और कार्य पद्धतियों की शुरूआत को लेकर होती है। अतः कुछ लोगों के सहयोग से बनी संस्था में मैंने ऐसे लोगों को सदस्य बनाया जो मेरे कामों में मेरी भरपूर मदद करते और मुझे सही दिशा दिखाते ताकि संस्था सिर्फ बनाने के लिए ही नहीं हो पर उसमें प्रोजेक्ट आते रहें। संस्था में काम करते हुए जब भी मैं गांव जाती तो जाने के लिए मुझे काफी दिक्कतों का सामना करना पड़ता। जैसे कि संस्था के किसी साइकिल चलानेवाले या मोटरसाइकिल वाले से कहना पड़ता कि मुझे गांव तक छोड़ दीजिए। लोगों से बार-बार मिन्नत करना पड़ता। अतः मैंने तय किया साइकिल चलाना सीखना होगा। एक सहयोगी ने मुझे साइकिल चलाना सिखा दिया। इससे मुझे गांवों तक जाने में आसानी हुई। फिर मैंने गांव की महिलाओं और लड़कियों को भी साइकिल चलाना सिखा दिया। इस संस्था में साथियों के साथ कुछ वाद-विवाद होने के बाद मैंने उस संस्था को छोड़ दिया।

पारिवारिक माहौल संस्थागत होने के कारण एक बार फिर किसी संस्था से जुड़ने का मन बनाया। मैं 'जुड़ाव' संस्था से जुड़ गई। पर वहां भी मैं नहीं रह सकी। संस्थागत कार्यों में धीरे-धीरे बदलाव आने लगे थे। कार्य करने के तरीके, उसके कार्य का रिजल्ट इत्यादि मापना कोई आसान काम नहीं था। उस पर दाता संस्थाओं की बार-बार रिजल्ट की मांग बेहद कठिन प्रक्रिया थी। मुझे लगा कि मैं यहां भी टिक नहीं पाऊंगी। चूंकि मैं ज्यादा पढ़ी-लिखी नहीं हूं अतः मुझे दूसरी जगह (जैसे सरकारी क्षेत्र) में नौकरी मिलना संभव नहीं था। अतः यहीं पर रहकर फिर से गांव जाने का काम शुरू किया। गांव की महिलाओं को संगठित करना, महिला समूह बनाना, बैंकों से महिलाओं के समूह को लोन दिलवाने आदि का काम करती रही। संस्था द्वारा चलाये जा रहे रैली, धरना, सम्मेलन इत्यादि में भाग लेना मुझे अच्छा लगता था। 'संवाद' से जुड़ने से पहले भी गांव जाती थी। अब भी गांव जाती हूं। एस.एच.जी. से जुड़ी महिलाओं के साथ उनके घरों में मारपीट या घरेलू हिंसा से संबंधित कोई घटना होती तो गांव में बैठक कर गांव वालों से ही फैसला करवाती हूं। मेरा महिला समूह शहर में भी है और पंचायत में भी। 5 महिला समूह का दुकान खुलवाया। एक महिला समूह की महिलाओं को गांव में ही राशन वितरण की दुकान खुलवाया।

उपर्युक्त प्रस्तुति में जीवन के संघर्ष से उभरी महिला और उसकी बदलती मानसिकता की तह दर तह खुलती दिखलाई पड़ती है। सदियों से चली आ रही दैहिक, मानसिक, भावनात्मक शोषण की यहां पहचान है। और अपनी पहचान की प्रक्रिया में उठते सकारात्मक कदम हैं। एक ओर पुरानी पीढ़ी की मान्यता है कि महिला घर से बाहर नहीं निकलना चाहिए। वहीं दूसरी ओर महिला की 'कहीं दूर' निकल जाने की धुंधली सी लालसा में सिमटकर रह जाती है। वह चाहकर भी अपने लिए कोई सवाल नहीं उठा पाती है। घर परिवार की समस्याओं में उलझी और सबों के

सलामती में ही अपने होने की सार्थकता महसूस करती है। आज हमारा समाज ऐसा है, जहां पूंजीवाद तो उभर रहा है पर सामंती ढांचा पूरी तरह टूटा नहीं है। महिला के सामने आज भी वही पुराने जमाने की परिस्थितियां हैं। सबसे पहले अपने अस्तित्व बचाये रख सकने की है। यहीं से शुरू होती है प्रगति और विकास की लड़ाई। ■

शिक्षा आगे की राह को सुगम बनाती है

सागोरी हेम्ब्रम

''अधिकांश माता-पिता अपनी बेटी का विवाह करने के बाद अपने को जिम्मेदारी से मुक्त समझते हैं। जिस लड़की के हाथ में अपने पैरों पर खड़े होने लायक शिक्षा की डिग्री भी नहीं, मां-बाप के घर की छत पर आसरा भी नहीं, उसके लिए यातना को यातना के रूप में न पहचानने के अलावा कोई रास्ता नहीं रहता। कई बार तो उसे यह अहसास भी नहीं होता कि जिंदगी इन स्थितियों से अलग और भी बेहतर हो सकती है। अपने पांव पर खड़े होने के लिए सबसे पहली जरूरत है शिक्षित होना। शिक्षा के द्वारा ही उसमें अपने आस-पास की परिस्थितियों का विश्लेषण और उसमें अपनी 'जगह' की पहचान करने की समझ विकसित होती है।''

मैं सागोरी हेम्ब्रम, बलवा गांव, मधुपुर की रहने वाली हूं। मेरे घर में मां-बाप के अलावा केवल एक भाई है। मुझे बचपन से ही पढ़ने की बहुत इच्छा थी। पर मैं सिर्फ नवीं क्लास तक ही पढ़ पाई, क्योंकि मेरे मां-पिताजी के पास पैसे का अभाव था। पैसे के अभाव के कारण हम दोनों भाई-बहन ज्यादा नहीं पढ़ पाए। स्कूली शिक्षा के दौरान भी मैंने बहुत कष्ट झेले।

मैं मड़ुवा का गट्ठा (भात), मड़ुवा का लड्डू आदि खाकर स्कूल जाती थी। वहीं पर दूसरी लड़कियां भात, दाल, सब्जी खाकर आती थी। जब वे मुझसे पूछती कि तुम क्या खाकर आई हो तो मुझे बहुत शर्म महसूस होता। मुझे यह बतलाना अच्छा नहीं लगता कि मैं मड़ुवा का गट्ठा खाकर आई हूं। हमलोगों के पास ज्यादा जमीन नहीं थीं, पर जितनी जमीन थी उसी पर हम लोग खेती कर अपनी जीविका चलाते थे। हम दोनों भाई-बहन को नदी पार कर स्कूल जाना पड़ता था। बरसात के दिनों में हमलोगों को स्कूल जाना मुश्किल होता था। क्योंकि नदी पार करने का कोई साधन उपलब्ध नहीं था। मैं सोचती थी कि पढ़ने से सही रास्ता मिलेगा और भविष्य में परिवार के लिए आगे की दिशा में ले जाने की भी सोच सकते हैं। जैसे प्रत्येक परिवार शिक्षित होगा तो पूरा समाज के लोग भी शिक्षित होगें। जब मैं 18 वर्ष की थी उसी समय से परिवार एवं समाज के बारे में सोचने की शुरूआत हो गयी थी। परिवार स्वस्थ होगा, तो गांव, समाज के लोग भी स्वस्थ होंगे।

1990 में मेरी शादी हुई। पढ़ाई में मेरी रूचि के कारण शादी के बाद भी पढ़ाई जारी रखकर बोर्ड की परीक्षा पास की। परीक्षा पास करने के बाद मुझे घर से बाहर जाकर काम करने की इच्छा हुई। संयोग से 'प्रेरणा भारती' की कल्याणी मीणा दीदी से मेरी मुलाकात हो गई। वे हमारे गांव के ही एक पड़ोसी के घर आई हुईं थीं। वहीं पर बातचीत हुआ कि मधुपुर के 'प्रेरणा भारती' के ऑफिस में आना। मुझको गांव के ही भीम दादा ने 'प्रेरणा भारती' का ऑफिस पहुंचाया। ऑफिस में 5 दिन का ट्रेनिंग में भाग लिया। संस्था से जुड़कर नई जानकारी और कई तरह का ट्रेनिंग मिला। विभिन्न लोगों से पहचान बढ़ी। शुरू में मुझे 150 रुपया मिलता था, जो उस समय के हिसाब से ठीक था। संस्था में जुड़कर खुशी हुई। संस्था द्वारा ही मुझे एक राज्य से दूसरे राज्य में जाने का मौका मिला। इससे मुझमें हिम्मत बढ़ी कि

मैं बाहर जा सकती हूं। उसके साथ-साथ संस्था से अपने हाथ में पैसा मिलने लगा, तो खुशी और भी दोगुनी हो गयी।

मुझे लगता है कि गांव, समाज, संस्था की ओर से जो काम दिया गया है, उस काम को करने में कोई दिक्कत नहीं होती है। इसका कारण यह है कि समाज के लोगों के साथ अपने परिवार जैसे रिश्ता बनाना पड़ता है। तभी गांव, समाज में मिल-जुलकर रह सकते हैं। मुझे काम करने में दिक्कत नहीं होती है। समाज के महिला-पुरूष के साथ लगता है कि मैं अपने परिवार के साथ ही हूं। जिन गांवों में मैं काम करती हूं वहां पहले महिलाएं घूंघट लिये रहती थीं, पर अब वे घर से बाहर निकल रही हैं।

महिला जब काम के लिए बाहर निकलती है तो उसे कई स्तरों पर संघर्ष करना होता है। कई बार सिर्फ बहादुरी से काम नहीं चलता। विचार के स्तर पर भी लड़ना होता है, क्योंकि लोगों के अपने-अपने तर्क होते है। बाहरी चीजों से लड़ा जा सकता है, उनसे मुक्ति पायी जा सकती है। जैसे अंधेरे का निराकरण अंधेरे से लड़ना नहीं, बल्कि रोशनी की तलाश करना है। वह रोशनी शिक्षा और आत्मज्ञान है। यही एक ऐसा साधन है जिसके माध्यम से हर इंसान अपनी लड़ाई खुद लड़ने और अपना अंधेरा खुद दूर करने की ताकत पाता है। शिक्षित हो जाने पर दूसरों को हमारा जिम्मा लेने की जरूरत नहीं रहती है। 'सम्मान का संघर्ष' एक महिला के लिए कभी खत्म न होनेवाला संघर्ष है। समाज के भीतर अपने लिए उचित स्थान प्राप्त करने के लिए उसे भीषण यातनाओं से गुजरना पड़ता है। उसका यह संघर्ष अभी भी जारी है। ■

धैर्य बनाए रखिए, हार के आगे जीत है

फातिमा

''हारने और हार मान लेने में बहुत अंतर है। जीवन में वही लोग सफल होते हैं जो हार से घबराते नहीं उसे खुशी खुशी गले लगाते हैं। हार से सीख लेकर आगे के रास्ते को सुगम बनाते हैं और कोशिश जारी रखते हैं। सफलता उसके कदम जरूर चूमती हैं। जो लोग यह मान लेते हैं कि मैं हार गया हूं/गयी हूं वे अपनी मंजिल तक पहुंच ही नहीं पाते बल्कि मंजिल तक पहुंचने से पहले ही टूट कर बिखर जाते हैं। चाहे कोई भी संकट या विपदा आयें हमें धैर्यपूर्वक उसका सामना करना चाहिए। हार से घबराकर अगर हम कार्य करना ही छोड़ दें तो हमें जीत कैसे मिलेगी। मेरे भी जीवन में काफी उतार चढ़ाव आये परंतु मैंने उससे हार नहीं मानी बल्कि डटकर उसका मुकाबला किया। और आज एक मुकाम पर पहुंची हूं। तमाम झंझावातों के बीच भी मैंने अपने सफर को जारी रखा। मेरे निजी जीवन के उन अनसुलझे पहलुओं से आप वाकिफ होंगे जब आप मेरे जीवन की यात्रा को पढ़ेंगे उससे रूअबरू होंगे।''

मैं फातिमा शमीम अंसारी, कोडरमा जिले के डोमचांच प्रखंड में एक छोटा सा गांव है नावाडीह, वहां की निवासी हूं। मेरा बचपन बहुत ही अच्छा बीता क्योंकि मेरे अब्बू नौकरी करते थे। वहीं हमलोग सब साथ रहते थे। शादी ससुराल, जात-पात, दुनियादारी से मैं अनभिज्ञ थी। 16 साल की उम्र में मेरी शादी हो गयी। हमें पता भी नहीं था कि ससुराल में कैसे रहना है, लोगों से कैसे बात करनी है, पर धीरे-धीरे सारी चीजें समझने लगी, मेरे दो बच्चे भी हो गये थे। मेरे पति की मुंबई में नौकरी थी। वे हम सबों (मैं और मेरे बच्चे) को मुंबई ले आये। पति एवं बच्चों के साथ मैं काफी खुशी से रह रही थी। गांव के माहौल एवं शहर के माहौल में काफी फर्क था। कहीं आने जाने पर पाबंदी नहीं, न ही कुछ पहनने पर रोक टोक। बच्चों

की परवरिश भी अच्छे ढंग से चल रही थी, एक बच्चे को आगे बढ़ने के लिए जो चीजें चाहिए वे सारी चीजें हम उन्हें दे पा रहे थे कि अचानक से मेरे ऊपर पहाड़ टूट पड़ा। मेरे पति बीमार रहने लगे और अचानक से मुझे बताये बिना अस्पताल में भर्ती हो गये। जब मैं अस्पताल गयी तब पता चला कि उन्हें कैंसर है और उनका ऑपरेशन होने वाला है। मुंबई शहर में न कोई रिश्तेदार न ही कोई जान पहचान। मुझे तो कुछ समझ में नहीं आ रहा था। हमलोग जहां रहते थे वहां के लोग फरिश्ते बनकर आये। उन सबों की मदद से ऑपरेशन हो गया। डॉक्टर ने आश्वासन दिया कि सब ठीक हो जायेगा। पांच दिन अस्पताल में रहने के बाद उन्हें घर ले आये। मुंबई जैसे बड़े शहर में अकेले आना-जाना कर मैं उनका देखभाल करती। घर में दो बच्चे भी थे उन्हें भी देखभाल करना पड़ता। मैं लगभग टूट सी गयी। अस्पताल आने जाने में बहुत कठिनाईयों का सामना करना पड़ता था। सुबह तो किसी तरह चली जाती थी पर शाम को बहुत कठिनाईयों का सामना करना पड़ता था। एक दिन जब मैं शाम को अस्पताल से लौट रही थी, एक कार वाले ने पूछा - ताई कहीं जाना है। मैंने उसे पता बताया। चूंकि गाड़ी नहीं मिलती थी। मैं गाड़ी में बैठ गई। मेरे गाड़ी में बैठते ही उसने गाड़ी का कांच बंद कर दिया। गाड़ी में सिर्फ ड्राइवर और मैं थी। मेरे पास पैसे भी थे। मुझे डर लगने लगा। जब मैं गाड़ी में बैठ रही थी मेरे पति मुझे देख लिये थे वे किसी का फोन मांग कर मुझे फोन किये और डांटने लगे। फोन आने पर ड्राइवर पूछने लगा किसका फोन था? पहले तो मुझे कुछ समझ में नहीं आया फिर बोली मेरे पति का फोन था। उनके दोस्त अस्पताल में भर्ती हैं तो पूछ रहे थे कि तुम देखकर लौटी कि नहीं तब ड्राइवर ने कहा - आप के पति कहां काम करते हैं? मैंने वहां थोड़ा समझदारी दिखायी और ड्राइवर को बताया पुलिस में हैं। फिर मेरे पति के दोस्त जो पुलिस में हैं उनका पता बता दिया। मैं बहुत डर रही थी कि अचानक से ड्राइवर ने गाड़ी का शीशा नीचे किया और बोला ताई मुझे कुछ पैसा दो मेरी बेटी अस्पताल में भर्ती है। पहले मुझे लगा कि ज्यादा पैसा दे दूं परन्तु यह भी भय था कि अगर मैं पैसा निकालूं तो यह सारे पैसे देख लेगा। मेरे पास अलग से कुछ पैसे थे उसे ड्राइवर को दिया। वह ज्यादा पैसा मांग रहा था पर मैंने नहीं दिया। फिर वह मुझे मेरे बताये पते पर छोड़ा। मैं बार-बार अल्लाह का शुक्रिया अदा करती कि आज आपने मुझे बचा लिया। मेरे पैसे भी जाते और मेरे साथ भी कुछ अनहोनी हो सकती थी। किसी तरह पति को फोन किये कि मैं ठीक से पहुंच गयी हूं। घर पहुंचकर मैं रोये जा रही थी। बच्चे भी घबराकर पूछ रहे थे मम्मी क्या हुआ पर मैं उन्हें क्या जवाब देती। किसी तरह अपने मन को शांत किया।

पति के इलाज में काफी पैसे खर्च हो गये पर मन में खुशी थी कि पति ठीक हो रहे हैं। दवा चलता रहा। कुछ दिन बाद जब डॉक्टर के पास फिर से चेकअप के लिए गये तब डॉक्टर ने बीमारी की गंभीरता के बारे बताया। उन्होंने कहा कि ऑपरेशन होने के बाद भी सुई और केमो चलता रहेगा। दवाई तो आजीवन लेनी पड़ेगी। चार केमो तो ठीक ठाक हुआ दो केमो बचा था कि इनकी तबीयत फिर से खराब हो गई। मैं सोच में पड़ गई कि इनका इलाज कैसे करवाऊंगी। गांव वाले और रिश्तेदार बोलने लगे गांव चले आओ पर मैं गावं नहीं गयी। मेरे भैया जो नागपुर में रहते थे उन्होंने फोन किया और कहा कि यहां आ जाओ उनका इलाज यहां कराते हैं। उनको लेकर भाई के यहां नागपुर पहुंची, वहां भी इलाज चला पर स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ। बच्चे मायूस थे। मैं भी हताश थी पर मुझे खुदा पर भरोसा था। फिर पति के कहने पर मैं वापस उन्हें लेकर पूना चली आई। उनके साथ काम करने वाले लोगों ने पैसा इकट्ठा कर उनका इलाज करवाये, परंतु दिनोंदिन उनकी तबियत सुधरने की बजाय बिगड़ती गयी। उन्हें भी शायद आभास हो गया था कि मैं ज्यादा दिन नहीं बचूंगा। उन्होंने कहा कि मुझे ले चलो। मुझे अपने माता-पिता, भाई-बहनों से मिलना है। फिर हम सब गांव चले आये। गांव वालों ने सुझाव दिया कि इनके हिस्से की जमीन बेचकर इनका इलाज कोलकाता में कराओ ये ठीक हो जायेगा। पर मेरे देवर नहीं माने वे बोले भैया अब बचेंगे नहीं तो जमीन क्यों बेचे? अंततः बीमारी से जूझते-जूझते मेरे पति का देहान्त 26 सितंबर 2016 को हो गया। उनके इंतकाल से तो मैं टूट गई कि अब क्या होगा? फिर बच्चों को देखकर लगा अगर मैं टूट गई तो इनका क्या होगा? इनके लिए मुझे हर हाल में जीना है। दो महीने ससुराल में

गुजारने के बाद वापस पूना गई इस आस में कि मेरे पति के कार्यालय से कुछ पैसा मिलेगा पर वहां भी कुछ नहीं मिला। यूनियन वाले बोले केस लड़ रहे हैं जीतने पर पैसा मिलेगा। पूना जैसे शहर में बिना कोई आर्थिक उपार्जन के मैं बच्चों को कैसे पालती? ससुर से बात करने के बाद वापस ससुराल आ गई। कुछ दिनों तक तो सब ठीक रहा। बाद में सब कहने लगे हमलोग तुमसबों को नहीं पाल सकते। बेटा ही नहीं है तो तुम सबों से हमारा क्या रिश्ता? मैंने उनलोगों से कहा कि अब तो मुझे घर से निकलना होगा क्योंकि मुझे बच्चों को पालना है और मैंने ठान लिया चाहे जो भी हो जाय मैं बच्चों को अच्छी शिक्षा दिलाऊंगी। मैंने कह तो दिया पर काफी उधेड़बुन में थी। इसके पहले कुछ करना तो दूर घर से निकली भी नहीं थी, पर सारी शंका, सारी दुविधाओं को पीछे पछाड़कर मैं संघर्ष के रास्ते पर निकल पड़ी। बेटा को मेरी मां के पास छोड़ दिये। एक दिन काम के सिलसिले में मैं मुखिया से मिलने गई तो संयोग से वहां एक टीचर मिली उन्होंने जब मेरी स्थिति को जाना तो कहने लगी क्या आप विद्यालय में पढ़ा सकती हो? थोड़ी देर तो मैं चुप रही क्योंकि मैं तो सिर्फ 10वीं क्लास तक की पढ़ाई की थी। फिर हिम्मत बटोरकर उन्हें हां कर दिया। विद्यालय घर से काफी दूर था। आने-जाने में काफी कठिनाईयों का सामना करना पड़ता था। पर मैंने हार नहीं मानी क्योंकि मुझे कुछ करना था। बच्चों को पालना था। तमाम मुसीबतों को धत्ता बताते हुए स्कूल में पढ़ाने लगी। डेढ़ हजार रूपये मिलते थे उसी से मेरा और बेटी का गुजारा चलता था। स्कूल में पढ़ाने के कारण मेरे परिचय का दायरा बढ़ा। अब मैं बच्चों को ट्यूशन भी पढ़ाने लगी। सिलाई का काम भी करने लगी। इसके बाद बेटी को अंग्रेजी माध्यम के स्कूल में पढ़ाने लगी क्योंकि उसकी इच्छा थी कि वह अंग्रेजी स्कूल से ही पढ़े। फीस ज्यादा होने के कारण मैंने जेवर बेचकर भी उसकी पढ़ाई को जारी रखा कि मेरे कारण उसका भविष्य खराब न हो। फिर मेरा परिचय 'संग्राम' संस्था से हुआ। उनका भी कुछ काम मैंने किया। फिर उनके मार्फत ही 'संवाद' से परिचय हुआ। जब 'संवाद' से जुड़ी तो मुझे कुछ भी नहीं आता था पर साथियों ने काफी मदद की। रिर्पोट लिखने से लेकर गांव में काम करने के तरीके के बारे सब उन्होंने ही मुझे सिखाया। साथियों के सहयोग से मैं कार्य करने लगी और नित नयी चीजें सीखने लगी। शुरूआत में क्षेत्र में कार्य करने में थोड़ी कठिनाई आई। मेरा धर्म एवं पहनावा को लेकर लोग टिप्पणी करते पर धीरे-धीरे काम की बदौलत मैंने उनके विश्वास को जीता। आज क्षेत्र में मेरी पहचान है, लोग इज्जत करते हैं। महिलायें खुल कर अपनी समस्याओं को रखती हैं और मैं यथासंभव उनके समस्या को सुलझाने में मदद करती हूं। पर कहते हैं आप अच्छे से रहो यह किसी को सुहाता नहीं है। अब मेरे ससुराल वाले मुझे घर से निकालने पर आमादा हो गये। बीच-बीच में मेरा देवर मेरा सामान भी फेंक देता था क्योंकि उसने चालाकी से मां-बाप, बहन से घर लिखवा लिया था। यहां तक कि मेरे ससुराल वाले मेरे चरित्र पर भी उंगली उठाने लगे कि कहां जाती है क्या करती है? कुछ अता पता नहीं रहता है। मैं धैर्यपूर्वक इन सबों का सामना करती रही। मैंने अपनी बात गांव वालों को समक्ष रखी कि अभी तो किसी तरह अपना गुजारा कर रही हूं घर कैसे बनाऊंगी? गांव वालों के समझाने पर उन्होंने कुछ दिनों की मोहलत दी। उस समय तक मेरा बेटा इंटर की पढ़ाई पूरी कर चुका था और हमारे साथ ही रहने लगा था। मैं जब रोती बच्चे ढांढस बंधाते मम्मी हिम्मत मत हारो सब ठीक हो जायेगा। हम सभी मेहनत करेंगे और घर बनायेंगे। बेटा पढ़ाई के साथ-साथ पार्ट टाइम जॉब करने लगा। वक्त ने करवट लिया और मेरे भी दिन बदले। मैंने अपना घर बनाना शुरु किया और आज मेरा घर बन चुका है जिसमें हम तीनों साथ रहते हैं। बेटा भी पढ़ाई कर रहा है और बेटी वकालत की शिक्षा प्राप्त कर रही है। हां पर मैं समाज से कुछ कहना चाहूंगी कि समाज द्वारा लड़कियों या महिलाओं पर जो बंदिशे लगायी जाती हैं वह बंद हो। महिलाओं को आर्थिक रूप से स्वावलंबी बनाने के लिए उन्हें सहयोग करना चाहिए। जब आपके पास पैसा होता है तो परिवार एवं समाज आपकी इज्जत करता है। और बुरे वक्त में आप टूटकर बिखरते नहीं हैं। समय-समय की बात है जिन लोगों ने मुझे घर से निकाला, मेरे चरित्र पर लांछन लगाया आज वही लोग मुझे सम्मान देते हैं, मेरी राय लेते हैं पर यह सब संभव हो पाया 'संवाद' के कारण। 'संवाद' एक संस्था नहीं परिवार है। जहां न जात-पात, न अमीर-गरीब, न धर्म का

भेदभाव है। सब मिलकर रहते हैं। एक दूसरे को सहयोग करते हैं। आज अगर फातिमा शमीम अंसारी से समाजसेवी फातिमा बनी तो वह 'संवाद' के कारण ही। 'संवाद' ने मुझे टूटकर बिखने से बचाया, एक पहचान दी और साथ ही आर्थिक सहारा भी। 'संग्राम' संस्था ने मुझे 'संवाद' से मिलवाया इसके लिए उनको भी आभार। मेहनत, लगन और हिम्मत जहां होती है मंजिल तक वह अवश्य पहुंचता है।

सबों को हूल जोहार!

हिम्मत से पतवार संभालो, फिर क्या दूर किनारा!

सुमित्रा हेम्ब्रोम

"मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज मनुष्यों के समूह से मिलकर बना होता है। समाज में विभिन्न वर्ग, जाति एवं धर्म के लोग रहते हैं। विचारधारायें भी अलग होती हैं तो सोच भी अलग होती है। कुछ लोग सकारात्मक सोच वाले होते हैं तो कुछ नकारात्मक सोच वाले। इतनी भिन्नताओं के बावजूद लोगों में एकता, परस्परालंबन, सहजीविता, सामूहिकता एवं सहयोग की भावना होती है। समाज को इतनी गहराई से जानने एवं समझने का अवसर मुझे 'संवाद' से जुड़ने के बाद मिला।"

मैं सुमित्रा हेम्ब्रोम एक मध्यमवर्गीय किसान परिवार से ताल्लुक रखती हूं। मेरा जन्म धनबाद जिले के निरसा प्रखंड के एक छोटे से गांव पालुडीह में हुआ। मेरे परिवार में मां, पिता, दादी, बुआ और हम भाई बहन सब साथ रहते थे। पिताजी इंटरमीडिएट तक पढ़े थे, पर वे खेती किसानी ही करते थे। मेरे बड़े भाई की अचानक मृत्यु हो जाने के कारण मेरे नाना-नानी मेरे पूरे परिवार को धनबाद से जामताड़ा ले आये। हम सभी भाई-बहन वहीं बड़े हुए। हम सभी भाई-बहनों की शिक्षा जामताड़ा के एक मिशनरी स्कूल में हुई। नौकरी नहीं रहने के बावजूद भी मेरे पिताजी ने हम सभी भाई-बहनों को अच्छी शिक्षा एवं परवरिश दी। कभी किसी चीज की कमी महसूस नहीं होने दी। सब कुछ ठीक ठाक चल रहा था। मैंने अपना स्नातक भी पूरा कर लिया कि वक्त ने करवट बदला। पापा-मम्मी और मैं किसी काम से गोड्डा गये थे। जब वहां से वापस लौट रहे थे तो दुमका में पापा को अटैक आया उनका नस और मुंह खींचने लगा। वैसी स्थिति में ही आसाढ़ी पूजा के कारण वे निरसा अपना घर आये। इलाज के बावजूद उन्हें लकवा मार गया। मम्मी को भी शुगर की बीमारी हो गयी। परिवार की आर्थिक व्यवस्था चरमराने लगी। मम्मी, पापा के दवाई का खर्च, हम भाई-बहनों के पढ़ाई का खर्च पूरा करने में काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा था। फिर मैं और मेरा भाई ट्यूशन पढ़ाने लगे, पर गांव में भी लोगों की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं होने के कारण पैसा समय पर नहीं मिलता था। पर दिन चलने लगा। ट्यूशन के साथ-साथ मैं सरकारी नौकरी की तैयारी भी करती रही। दारोगा एवं लोको पायलट की परीक्षा भी पास की। लोको पायलट में मेडिकल टेस्ट में छांट दी गई। वहीं दारोगा वाले में दौड़ इत्यादि में सफल होने के बाद भी मेरिट लिस्ट में नाम नहीं आया। ये दो घटनायें झारखंड सरकार की व्यवस्था की पोल खोलती है। जो पैसा दे पाते हैं नौकरी उसकी ही होती है। अन्य सरकारी नौकरियों का भी यही हाल है। वेकेन्सी तो निकलती है, लोग फार्म भी भरते हैं, परीक्षा भी देते हैं, और जब परिणाम का वक्त आता है, तब परीक्षा रद्द हो जाती है। कभी नियोजन नीति तो कभी 1932 का खतियान, ये बहाना बनाकर सालों साल केस लड़ा जाता है। तब तक सरकारी नौकरी की उम्र की सीमा खत्म हो जाती है।

मैं भी नौकरी की तलाश में इधर-उधर भटक रही थी। मेरी ममेरी बहन बागदहा में 'संवाद' के साथ जुड़कर इंटरनेट साथी के रूप में कार्य कर रही थी। उसने ही मुझे 'संवाद' के बारे बताया कि चन्द्रदीपा पंचायत में एक पद खाली है यदि तुम करना चाहो तो बात कर सकते हैं। पैसों की जरूरत तो मुझे थी ही मैंने तुरंत हां कर दिया। फिर 'संवाद' मधुपुर से मुझे फोन पर सूचना मिली कि लिखित परीक्षा एवं साक्षात्कार के लिए मधुपुर आना है। नियत तिथि एवं समय पर मैं मधुपुर पहुंची। मेरे जैसे कई और केंडिडेट भी थे। लिखित परीक्षा एवं मौखिक साक्षात्कार हुआ। और फिर मैं मई 2019 से 'संवाद' से जुड़कर क्षेत्रीय कार्यकर्त्ता के रूप में कार्य करने लगी।

'संवाद' से जुड़ने के पहले मुझे संस्था क्या है, क्या काम करती है, किसके लिए करती है इन सब बातों से अनजान थी। फिर बैठकों, शिविरों के माध्यम से संस्था के क्रिया कलापों से अवगत हुई। उनके लक्ष्य एवं उद्देश्य के बारे पता चला। क्षेत्र में काम क्या करना है, कैसे करना है, इन सारी चीजों को समझने लगी। संस्था से जुड़ने के बाद मेरी एक अलग पहचान बनी।

मिशनरी स्कूल में पढ़ने के फलस्वरूप मैं मदर टेरेसा से काफी प्रभावित थी। सेवा की भावना भी थी। मन में एक सोच थी कि हम भी समाज के बीच वैसे लोगों की सेवा करेंगे जिनका दुनिया में कोई नहीं है। स्कूल में भी एल. टी.एस. ग्रुप में थी जिसका अर्थ था 'लीडरशिप ट्रेनिंग फॉर सरवाइवर'। मेरी यह सोच संस्था में जुड़ने के बाद और बलवती हो गई। संस्था से जुड़कर भी मैं वंचितों के लिए ही कार्य कर रही हूं। उनके हक अधिकार उन्हें मिले इसके लिए उन्हें जागरूक करती हूं।

हर संस्था के प्रशिक्षण देने की विधा अलग-अलग होती है। संवाद में जब कोई नये साथी आते हैं तो पुराने साथी उनको कामों में सहयोग एवं मार्गदर्शन करते हैं। कार्यशाला, प्रशिक्षण शिविरों में समूह चर्चा, सामूहिक अध्ययन इत्यादि के माध्यम से विषयवस्तु को समझाया जाता है। जो साथी अंतर्मुखी है उन्हें बोलने के लिए प्रेरित किया जाता है। सबको आगे बढ़ने का अवसर मिले इसका खास ध्यान रखा जाता है। त्रैमासिक बैठकों में हम सारे कार्यकर्त्ता अपने कार्यों का मूल्यांकन करते हैं। लक्ष्य से भटकने पर हमें उचित मार्गदर्शन दिया जाता है ताकि फिर से क्षेत्र में हम जोशो-खरोश के साथ काम कर सकें।

ग्राम सभा की समझ मेरे अंदर नहीं थी। संस्था के प्रशिक्षण के फलस्वरूप ग्राम सभा के बारे जानने का मौका मिला। ग्राम सभा फेडरेशन से जुड़ने का मौका मिला और वर्तमान में मैं ग्राम सभा फेडरेशन की सक्रिय सदस्य भी हूं।

सामाजिक क्षेत्र में काम करने का एक लाभ यह भी है। हमें प्रशिक्षणों के लिए नये-नये जगहों में भेजा जाता है। नयी जगहों में घूमने का मौका तो मिलता ही है साथ ही संपर्क का दायरा भी बढ़ता है और नयी-नयी चीजों की जानकारी भी मिलती है। चीजों को देखने के नये नजरिये का भी विकास होता है। धनबाद की होने के कारण मैथन डैम पहले भी गई थी पर इस बार जब साथियों के साथ गई तो डैम बनने की कहानी, लोगों का विस्थापन एवं संघर्ष का पता चला। अगर मैं दूसरी जगह नौकरी करती तो शायद इन चीजों से अनभिज्ञ रहती और समाज के इन पहलुओं को देखने का मेरा नजरिया कुछ अलग होता।

समाज परितर्वन का कार्य काफी चुनौती भरा है। आपको भिन्न-भिन्न तरह के लोगों से सामना करना पड़ सकता है। कुछ लोग आपके कामों की सराहना करेंगे तो कुछ टांग खींचने का कार्य भी करेंगे। समाज में नशापान है जिसके कारण महिलाओं पर हिंसा होती है। लैंगिक भेदभाव है, कुरीतियां है, कुप्रथायें हैं। पर मेरा मानना है कि अगर सच्चे मन से और प्रेम भाव से कार्य किया जाय तो सफलता एक दिन में तो नहीं, पर एक दिन अवश्य मिलेगी। अब लोग जागरूक हो रहे हैं और समाज में व्याप्त इन कुरीतियों, कुप्रथाओं एवं गलत मान्यताओं के खिलाफ आवाज उठा रहे हैं। कार्य करते हुए स्व का विकास भी हुआ है। आत्मविश्वास बढ़ा है, चीजों को देखने का नजरिया बदला है। भय खत्म हुआ है। अब बेझिझक अपनी बातों को रख सकते हैं और सबसे बड़ी बात हुई है वह है समाज का विश्वास हम पर बना है। ग्रामीणों का सहयोग मिलता है एवं उनके साथ अपनापन का रिश्ता भी बना है।

अगर सब कुछ सामान्य चलता रहा तो आगे भी समाज के साथ जुड़कर कार्य करना चाहूंगी और समाज परिवर्तन की दिशा में मेरा प्रयास जारी रहेगा। ■

इसलिए राह संघर्ष की हम चुनी

कल्पना कुंवर

''जिंदगी के टेढ़े- मेढ़े और उबड़-खाबड़ रास्ते पर चलना हर किसी के वश की बात नहीं है। क्योंकि ऐसे अनेक मौके आते हैं जब हमें लगता है कि हम सही दिशा में जा रहे हैं पर हम वहीं पर गोल-गोल घूम रहे होते हैं। लगता है जैसे चारों ओर अंधेरा छा गया हो। हमें दिखाई नहीं पड़ता कि रास्ता किधर से होकर जाना है। मेरे बचपन के शुरूआती दिन भी कुछ इसी प्रकार थे। न चाहते हुए भी पथरीली भूमि पर पांव रखकर चलना ही था।''

मेरा जन्म महाराष्ट्र राज्य के वर्धा जिले में हुआ था। मेरे पिता रेलवे में कोयला ईंजन चलाने का काम करते थे। मेरी माता एक घरेलू महिला थी। हम कुल पांच भाई-बहन थे, जिसमें दो भाई और हम तीन बहनें थीं। मैं अपने परिवार में सबसे छोटी थी। मुझे याद है मेरे पिता का ट्रांसफर नागपुर हुआ था, लेकिन उन्हें मिर्गी की बीमारी हुई, जिसके कारण उन्हें नौकरी से बैठाया गया। पिताजी के नौकरी से बैठने के बाद मां के ऊपर पूरा पारिवारिक बोझ आ गया। काफी आर्थिक तंगी के दौर से गुजरना पड़ा। एक वक्त भूखे भी रहना पड़ता था। उस समय स्कूल का 60 पैसे का फीस भरना भी काफी मुश्किल था। मेरे भैया फीस नहीं भरने की वजह से स्कूल की परीक्षा नहीं दे पाते थे। किसी तरह घर के बड़े पिता के बच्चों का पुराना कपड़ा पहन कर दिन गुजर रहा था। स्कूल जाते समय कभी पैर में चप्पल नहीं, घर- बाहर एक ही कपड़ा था। केरोसिन तेल से जले दीये की रोशनी या सड़क पर जले लाईट में पढ़ाई करते थे। इसी समय पिता को फिर से नौकरी का कॉल आया, फिर वहां जाना पड़ा। उस समय उन्हें रेलवे हॉस्पीटल में नौकरी मिली। उन्हें मिर्गी की बीमारी थी अतः वह बैठकर काम करते। किसी तरह मेरा नाम स्कूल में लिखा दिया गया और मैं मैट्रिक पास की। मैं पैसे के अभाव में नयी किताबें नहीं खरीद पाती, पुरानी किताब बाजार से आधे दाम में खरीद कर मैट्रिक तक पढ़ी। उसके बाद 11वीं क्लास में नाम लिखवाया और बी.कॉम. तक पढ़ी। पैसे के अभाव में बाहर से कोई भी ट्यूशन नहीं लगाई। पर किस्मत ने मेरा साथ नहीं दिया और उसी समय बीमारी की वजह से पिताजी का देहांत हो गया। पर तब तक दोनों बहन और दोनों भाई की शादी हो चुकी थी।

मां काफी कर्जे में थीं। मेरी शादी फुआ ने अजय जी के साथ कर दिया। मेरे ससुरजी महाराष्ट्र के पुलगांव में मिलिट्री में मेजर के पोस्ट में थे। रिटायर्ड होने के बाद सिवान (बिहार) चले आये। मैं और मेरे पति वहीं रह गये। मेरे पति शुरू में लारसन एन्ड टुरबो कंपनी में काम करते थे। उस समय इलेक्ट्रिक ट्रेनें नहीं चलती थीं। सिर्फ कोयला इंजन से चलने वाली ट्रेनें थीं। उनकी नौकरी स्थाई नहीं थीं। हर दो माह में जगह बदलनी पड़ती थी। उनके साथ मैं भंडरा, गोंदिया, डेहरी ऑन सोन, जपला और अन्य जगह घूमते-घूमते चितरंजन, बंगाल आ गयी। हमलोगों के साथ हमारी एक साल की बेटी भी थी। फिर चितरंजन से मेरे ससुर मुझे बिहार ले आये। बिहार में ससुराल के नियम थोड़े कठोर थे। वहां लोग पुराने रीति-रिवाजों के थे। बड़े लोगों के सामने घूंघट लेना पड़ता था, जो मेरे लिए थोड़ा कठिन था, क्योंकि मैं शहरी वातावरण में पली-बढ़ी थी। फिर भी मैं अपने आप को एडजेस्ट कर चल रही थी। लेकिन मैं वहां टिक नहीं पाई। एक चचेरे देवर के साथ मधुपुर अपने पति के पास आ गयी। वहां आने पर पता चला कि मेरे पति कर्ज में डूबे हुए हैं। मेरी शादी का सारा सामान लूट चुका था। एक बार फिर मैं

गरीबी की जिंदगी जीने को मजबूर हो गई। मुझे एक बेटा भी हुआ। एक बार फिर घर की परिस्थिति ने मुझे काम के लिए बाहर निकलना पड़ा।

काम की तलाश करते हुए मैं 'प्रेरणा भारती' संस्था आयी, पर मुझे काम नहीं मिला। क्योंकि मैं खोरठा भाषा नहीं जानती थी। उन्होंने मुझसे पूछा था कि अगर मुझे संस्था के काम से अकेले बाहर भेजेंगे, तो क्या मैं जा पाऊंगी? मैंने कहा कि शुरू में किसी को साथ भेजना पड़ेगा, आदत होने पर मैं अकेले बाद में जाऊंगी। पर वे इसके लिए तैयार नहीं हुए। फिर मैं भीमराव अंबेदकर विकास समिति, चांदमारी, मधुपुर संस्था में गई, वहां पर काम तो मिला, पर पैसा नहीं के बराबर मिल रहा था। उस समय मैं अपने दोनों बच्चों को घर में ताला लगाकर काम के लिए जाती थी। लेकिन पैसे की अच्छी व्यवस्था नहीं होने के कारण मैंने वहां काम छोड़ दिया। पर इसी बीच 19 जुलाई 1997 को 'ग्राम विकास फाउन्डेशन' के साथियों को मेरी काम की जरूरत का पता चला तो उन्होंने मुझे अपनी संस्था में रख लिया। यहां पैसा थोड़ा ठीक- ठाक मिलने लगा तो घर की आर्थिक स्थिति थोड़ी अच्छी हुई। मेरे पति जहां काम करते थे, वहां पैसा ठीक से नहीं मिलता था, जिसकी वजह से अपने बच्चों को सूद पर पैसा लेकर पढ़ाना पड़ा। मेरे बच्चे पढ़ने में बहुत तेज हैं, इसलिए मैं दूसरे मां- बाप की तरह उन्हें भी डॉक्टर, इंजीनियर बनाना चाहती थी। इसके लिए मैंने कोशिश भी की और बदनामी झेलकर बच्चों को पढ़ायी। उसी समय संस्था में आपसी कलह के कारण वहां भी काम छूट गया।

मैं एक बार फिर मैं बेकार हो गई। काम के लिये 'जुड़ाव' संस्था में आवेदन दिया। मैं 1 मई 2007 को 'जुड़ाव' संस्था से जुड़कर काम करने लगी। शुरू में वहां भी पैसे कम मिलते थे और मैं आर्थिक रूप से काफी कमजोर थी। जब भी बच्चों के स्कूल- कॉलेज की फीस भरनी होती तो 'जुड़ाव' के अरुण विनायक जी और जगदीश वर्मा जी काफी मदद करते। मेरे साथ बच्चों के स्कूल में जाकर शिक्षकों से बात कर देते और तब मेरे बच्चों को परीक्षा लिखने दिया जाता। एक बार घर में खाने को कुछ नहीं था तब 'जुड़ाव' के सहयोगियों ने मेरी मदद की। उन्हीं की मदद से मैं अपने बच्चों की फीस भर सकी। संस्था के काम के कारण अगर ऑफिस से आने में देर हो जाती तो अड़ोस - पड़ोस के लोगों की काफी बातें सुननी पड़ती। मेरी रुचि अपने बच्चों को पढ़ाकर कुछ लायक बनाना था। मैं सोचती मेरा जीवन तो ऐसे ही बीत गया, लेकिन अच्छी शिक्षा देकर मैं अपने बच्चों का जीवन सफल बनाना चाहती थी।

मेरी आकांक्षा थी कि मैं और पढ़ूं, लेकिन आकांक्षा और इच्छा को दबाना पड़ा। मेरे अंदर कई कला है - गीत गाना, छोटी कहानी लिखना, समाचार सुनना, दूसरों की तकलीफ में साथ निभाना। अपने सभी कार्य को तत्परता से पूरा करना मेरी खासियत है। लेकिन जिंदगी में मैंने गरीबी, भेदभाव को झेलने और संथाली, खोरठा भाषा को सीखने में काफी चुनौती का सामना किया। वर्त्तमान में मैं अपने आप को एक हिम्मती, शिक्षित, काम के प्रति जिद्दी महिला के रूप में पाती हूं।

जब मैं 'जुड़ाव' संस्था से जुड़ी, तो मैं काम नहीं जानती थी। वहां के अभिवावक और सहयोगी कार्यकर्त्ता साथियों से बहुत सीखा। यहां से मुझे बाहर जाने के कई मौके मिले। अनेक मुद्दों पर प्रशिक्षण लेना, किताबों के द्वारा ज्ञान का विकास होना, जुलूस, धरना में जाकर बहुत मजबूती से अपनी बातों को रखना ये सभी चीजें मेरे अंदर विकसित करने में संस्था का बड़ा योगदान है। संस्था में समय- समय पर आये हुए पत्रकार, बुद्धिजीवी और समाजसेवियों के आचार- विचार से मुझे काफी कुछ सीखने को मिला। उससे मुझे अपने सामाजिक काम करने में काफी मदद मिली।

संस्था के जरिये मैंने समाज में अच्छी पहचान बनायी। मेरा कार्यक्षेत्र मधुपुर के आस - पास का इलाका है। समाज में भेदभाव, ऊंच-नीच, गरीबी, दुःख-दर्द को बांटने का मैंने भरसक प्रयास किया। उसके अनुरूप अपनी भूमिका दर्ज करती रही हूं। समाज में पारदर्शिता के साथ काम करना मुझे अच्छा लगता है। महिलाओं से जुड़े मुद्दों को आगे लाने की कोशिश करती हूं। संताली और खोरठा भाषा को बोलना,

समझना मेरे लिए आज भी एक चुनौती है। अंग्रेजी कम जानती हूं। इस समस्या का फिलहाल सामना कर रही हूं। लेकिन सीखने की कोशिश हमेशा जारी रहेगी।

समाज में महिला का स्थान और कार्यक्षेत्र दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। सारी दुनिया की ताकतें इसी ओर लगी हुईं हैं। वे ताकतें हमारे समाज में भी विकसित हो रही हैं, जिन्हें हम पिछड़ा समाज कहते हैं। समस्याओं के निदान के लिए निष्पक्ष दृष्टिकोण जरुरी होता है। ऐसा नहीं है कि महिला की योग्यता कम है, पर ऐसा है कि उसकी इस श्रेष्ठता को सिद्ध करने का अवसर नहीं मिलता है। ज्यों-ज्यों उसकी श्रेष्ठता उसके कर्मक्षेत्र में प्रकट होती जाएगी, उसे स्वीकृति मिलती जाएगी। वह अपने केंद्र के आस- पास के अंधेरे को छितरा लेगी। तब अंधेरे से ज्यादा रोशनी के घेरे बढ़ जाएंगे। चीजें साफ-साफ दिखाई देने लगेंगी। दिशा दिखाई दे जाए, तो रास्ता पाटना आसान हो जाता है। ■

मेरे भीतर बदलाव दबे पांव आ रहा है..

निरसो हांसदा

"ईमानदारी से जब कोई महिला अपनी जाति, क्षेत्रवादी सोच छोड़कर एक बड़े सामाजिक सरोकारों के इलाके में आती है तो तमाम रिश्तों और जिम्मेदारियों की शक्ल बदलने लगती है। तब, सब कुछ कष्टकर, अनिश्चित और दुविधामय लगने लगता है। जिस इलाके में महिलाएं सख्ती से घर के भीतर रखी जाती हैं और जहां अहं के कारण कई तरह की मेहनत- मजदूरी को महिला के लिए अलाभकारी बता दिया जाता है। वहां महिला चाहकर भी कुछ नहीं कर पाती। तब समाज और खुद अपनी जमात से अलग-थलग पड़ी महिला के अंदर ज्वालामुखी बनते चले जाते हैं। उसके लिए उसे अनेक सामाजिक बाधाओं को लांघना पड़ता है। मेरे सामने भी कुछ ऐसी ही कठिनाईयां थीं जिन्हें पारकर मुझे आगे बढ़ना था।

मैं निरसो हांसदा बेलडीह की रहने वाली हूं। मैं एक गरीब परिवार से हूं। गरीब होने के कारण मेरे मां और पिताजी ने मुझे पढ़ने के लिए मामा के घर गायताडीह (करनडीह, जमशेदपुर) में रहने के लिए पहुंचा दिया। मामा ने स्कूल में मेरा दाखिला करवा दिया। जब 5 क्लास और 6 क्लास तक पहुंची तो पढ़ाई के साथ- साथ सड़क के किनारे कोयला बिक्री का काम भी किया। अतः अधिकतर लड़कों के साथ मेरी दोस्ती हो गई थी। उनके साथ मैं गोटी भी खेलती थी और कोयला भी बिक्री करती थी। कोयला के साथ- साथ लकड़ी भी बिक्री किया करती थी। शाम को चना बेचती थी और उसी पैसे से पढ़ाई करती थी। इस तरह मैंने मैट्रिक की परीक्षा पास की। उसके बाद मैंने कॉलेज में एडमिशन लिया।

मेरे मामा के घर के नीचेवाले हिस्से में एक सामाजिक कार्यकर्त्ता का परिवार रहता था। वे उस समय के झारखंड के आंदोलनकारी भी थे। उनका नाम कुमारचंद्र मार्डी है। उसी समय से साल्गे मार्डी से मेरा परिचय हुआ। वे लोग मुझे विभिन्न मीटिंगों में ले जाते थे। वे मुझे 'पीस' संस्था की ट्रेनिंग में भी ले गये। चूंकि उस समय मैं कॉलेज में तुरंत ही गई थी अतः इस तरह की मीटिंग और ट्रेनिंग मेरे लिए बिल्कुल नया था। मैं अपने गांव की मीटिंग भी कभी नहीं गई थी, इसलिए मुझे कुछ समझ में नहीं आता था। मैं नहीं जानती थी कि ग्रामसभा क्या होता है? आंदोलन के बारे में भी चर्चा होती थी, पर उस समय मैं नहीं समझ पाती थी। बस मैं मीटिंग में बैठी रहती और लोगों की बातें

सुनती रहती थी। उसी तरह दिन बीतने लगे और मैं अपनी इंटर की पढ़ाई पूरी की।

इंटर की पढ़ाई के बाद हरहरघुटु, करनडीह में नर्स की ट्रेनिंग के लिए गई। नर्सिंग ट्रेनिंग खत्म करने के बाद उसी हॉस्पीटल में काम करने लगी। नर्सिंग के साथ आगे की भी पढ़ाई करने लगी। पढ़ाई और नर्सिंग के बाद दसमात हांसदा के साथ 2011 में मेरी शादी हुई और मैं मुसाबनी आ गई। शादी के बाद मैं उसी हॉस्पीटल में रहकर काम करने लगी और अपने स्नातक की पढ़ाई पूरी की। उसके कुछ दिन बाद हमलोग मेढ़िया में रहने लगे जिससे मेरा नर्सिंग का काम छूट गया। फिर हमलोग खेती-बारी करने लगे। लेकिन पैसों की दिक्कतों के कारण हम दोनों फिर हरहरघुटु में भाड़े के मकान में रहने लगे और मैं सुन्दरनगर के मेडिकल दुकान में काम करने लगी। उसी से हम दोनों का गुजारा होता था। बाद में मेरे पति को भी वहीं पर काम मिल गया। इससे हमारी आर्थिक स्थिति थोड़ी मजबूत हुई। इसी बीच साल्गे दीदी ने मुझे 'संवाद' संस्था के बारे में बतलाया और मुझे उसमें काम करने के लिए कहा। उनका कहना था कि तुम पहले से ही कुमारचंद्र मार्डी के मीटिंग में जा चुकी हो तो तुम्हें थोड़ा तो पता होगा कि ग्रामसभा क्या है? और कैसे काम करना है? पैसे के अभाव में काम के लिए राजी हो गई और इस तरह 'संवाद' संस्था से जुड़ गई।

'संवाद' संस्था से जुड़ने के बाद पहली बार दिसंबर में मैं मधुपुर पहुंची और मीटिंग में शामिल हुईं। वहां ग्रामसभा, जन जागरूकता इत्यादि मुद्दों पर चर्चा की गई। मुझे 10 गांवों में काम करने के लिए कहा गया। जब मैं काम के लिए गांव पहुंची तो मैं सोचने लगी कि कौन सी बात से शुरू करूं और किससे पहले बात करूं। इसी प्रकार दिन बीतता गया। फिर धीरे- धीरे गांव के लोगों से परिचय हुआ। ग्रामसभा और लोगों के हक- अधिकार पर चर्चा की। संस्था से जुड़ने के बाद से गांव और शहर के बारे में जानकारी बढ़ी। उसके साथ ही अपने अंदर जो कमियां हैं उसको अब मैं जान पा रही हूं। अब गांवों में लोग मुझे 'संवाद' संस्था के द्वारा ही पहचानते हैं। अब मेरी अलग पहचान बन गई है। गांव की महिलाएं अपने हक- अधिकार के लिए खुद संघर्ष कर रही हैं। लोगों को सरकारी योजना का लाभ मिलने में संस्था भी सहयोग कर रही है। अब लोगों के साथ-साथ मेरी अपनी भी क्षमता विकास हो रहा है। जो काम पहले मुझे असहज लगता था, वही काम अब मैं आसानी से कर पाती हूं। हालांकि अब भी मुझे अनेक कामों को अपने सीनियर साथियों से सीखने की जरूरत है। अपना हक-अधिकार के लिए संस्था मेरे 'स्व' को सशक्त कर रही है। प्रयास और संघर्ष वर्त्तमान और भविष्य के लिए एक ऐसी संपत्ति है, जिसपर हमें गर्व करना चाहिए।

जब मैं समाज के बारे में सोचती हूं, तो मुझे लगता है कि समाज की एक अलग पहचान होती है। समाज में अलग-अलग धर्म, अलग-अलग रीति-रस्मों को पालन करने वाले लोग होते हैं। जैसे घर में एक परिवार में लोग साथ मिलजुल कर रहते हैं, उनकी अनेक कठिनाईयां होती हैं, फिर भी वे लोग अच्छी तरह से रहते हैं। सभी लोग एक-दूसरे के सुख-दुःख को समझते हैं। परिवार के लोग मुश्किल समय में भी साथ रहते हैं। उसी प्रकार समाज भी परिवार की तरह है। जिसमें सभी धर्म के लोग रहते हैं। सभी के अपने रीति-रिवाज होते हैं। पर सभी लोग मिलजुल कर रहते हैं। समाज में रहते हुए मिल जुलकर रहना और अपने समाज के अच्छे विचार को अपनाना है। समाज के सभी लोगों का शिक्षित होना आवश्यक है। तभी हम अपने हक-अधिकार के लिए लड़ सकते हैं। समाज में हम सब स्वतंत्र हैं। लेकिन हमें क्या चाहिए, उसके लिए सही जानकारी का होना आवश्यक है।

बदलाव दबे पांव आ रहा है। छोटे कस्बे में अशिक्षित, मजदूरी करती महिला भी अत्याचार सहना नहीं चाहती। हमारी पहचान आर्थिक रूप से स्वावलंबी होती महिला के रूप में उभरी है। नया रूप आत्मनिर्भर होने का, स्वाभिमान की रक्षा का, सामर्थ्य जुटा पाने का है। इससे महिलाओं के लिए संघर्ष करने का बल मिला है। अपने स्व विवेक के बल पर सही निर्णय और अपने लिए न्याय मांग पाने की क्षमता बढ़ी है। मैं अब पुराने विश्वासों और नये मान्याताओं के बीच जूझती महिला अपने अस्तित्व की पहचान रही हूं। ■

चलकर राह बनाती रही कदम-दर-कदम

सुशीला हेम्ब्रोम

''आमतौर पर लोग कहते हैं घर का खूंटा मजबूत होना चाहिए। अगर खूंटा मजबूत होता है तो आपका घर सही सलामत रहता है। जैसे ही खूंटे में घुन लगता है, खूंटा कमजोर होने लगता है। खूंटे के कमजोर होते ही घर के गिरने का भय लगा रहता है। जैसे ही खूंटा टूटता है घर भी भरभराकर गिर जाता है। घर के खूंटे के तरह ही घर के बड़े बुजुर्ग होते हैं जिनके रहने से घर मजबूत रहता है अर्थात घर में सामूहिकता रहती है। सब साथ रहते हैं, साथ काम करते हैं। किसी को कोई परेशानी नहीं होती है। परंतु बड़े बुजुर्गों के गुजर जाने के बाद घर टूटने लगता है। लोग व्यक्तिवादी बन जाते हैं। मेरे घर में भी ऐसा ही हुआ।''

पहले हमारा घर संयुक्त परिवार था। दादा-दादी, चाचा-चाची, मां-पिताजी, दो बुआ और मैं मिलाकर 9 सदस्य थे। दादाजी के सड़क दुर्घटना में मृत्यु के बाद पिताजी और चाचाजी ने बंटवारा कर लिया और अलग रहने लगे। दादी चाचाजी के साथ रहने लगी। बुआ लोगों की शादी हो गई। अब मुझे (सुशीला हेम्ब्रोम) को देखने वाला कोई नहीं था। मैं बहुत छोटी थी। पिताजी (अनिल हेम्ब्रोम) और मां (सूरजमनी किस्कू) दोनों को काम के लिए खेत जाना पड़ता। मेरी देखभाल ठीक से हो इसलिए मां ने मुझे नानी के पास छोड़ दिया। मेरा लालन-पालन नानी करने लगी। जब मेरी एक छोटी बहन हुई उसको भी नानी अपने घर ले गई। हम दोनों बहनों की परवरिश नानी घर पर ही हुई।

नानी घर में छोटा बच्चा नहीं होने के कारण हमलोगों को ज्यादा ही लाड़ दुलार मिलता। नानाजी चितरा कोलियरी में नौकरी करते थे। अतः मैट्रिक तक की पढ़ाई चितरा से हुई। उसके पश्चात जामताड़ा में इंटर में नामांकन मेरी नानी ने करवा दिया। नानाजी रिटायर्ड हुए और उन्हें लकवा मार गया। काफी इलाज के बाद भी उन्हें बचाया नहीं जा सका। इलाज में काफी पैसे खर्च हो गये थे तो मुझे लगने लगा कि अब मेरी आगे की पढ़ाई नहीं हो पायेगी क्योंकि पढ़ाई-लिखाई का सारा खर्च नाना-नानी ही मिलकर कर रहे थे। परंतु मेरी नानी ने हार नहीं मानी। मेरी बी.एस.सी. की पढ़ाई नानी के बदौलत संपन्न हुई।

ग्रेजुएशन पूरी करते ही मेरे फूफा ने मुझे फोन कर पूछा कि क्या तुम संस्था में काम करोगी? मैंने भी हाँ बोल दिया। मेरे हां बोलते ही मेरे फूफा ने अफजल अंसारी का नंबर मुझे दिया। अफजल से बात करने पर पता चला कि 'संवाद' नाम की संस्था को जामताड़ा में कार्य करने के लिए एक महिला की जरूरत है। यदि कार्य करना है तो अपना बायोडाटा मुझे भेज दो। उन्होंने मुझे 'संवाद' के कुंदन जी का नंबर दिया। उनसे बातचीत करने के बाद उन्होंने मुझे सारे दस्तावेज लेकर मधुपुर आने को कहा। लिखित परीक्षा एवं साक्षात्कार के बाद मेरा चयन 'संवाद' में हुआ। मुझे कार्यक्षेत्र में जामताड़ा प्रखंड का बरजोड़ा, चन्द्रदीपा, चालना और दुलाडीह क्षेत्र मिला। कार्यक्षेत्र में जाने के पहले ओरियेन्टेशन एवं क्षमतावर्द्धन कार्यशाला हुई जिसमें प्रोजेक्ट से जुड़े सभी साथी शामिल हुए। इस कार्यशाला में क्या करना है? कैसे करना है? इसकी विस्तृत जानकारी दी गई। शुरू-शुरू में कार्यक्षेत्र जाने में मन में भय रहता था कि लोगों से कैसे मिले? कैसे बात करें? पर जब काम करना है तो भय को पीछे छोड़ना पड़ेगा। यह बात मानकर चार साथी के साथ मिलकर अपना काम शुरू किया।

गांव के मांझी बाबा एवं अन्य ग्रामीणों के साथ संपर्क करती उन्हें अपना परिचय एवं कार्य के बारे बताती। क्षेत्र भी

नया और हम भी नये। पर धीरे-धीरे लोगों से संपर्क बढ़ने लगा तो कार्य करने में आसानी होने लगी। पहले कार्यक्रम के दौरान लोगों को घर-घर जाकर बुलाना पड़ता था। लोगों की अपेक्षा भी रहती थी कि हमें क्या मिलेगा? पर अब वह स्थिति नहीं रही। लोग जागरूक हो रहे हैं अपने हक अधिकार को जान रहे हैं। अब क्षेत्र में अपनी एक पहचान भी बन रही है। आत्मविश्वास में भी बढ़ोत्तरी हुई है। नये-नये जगहों में जाने का अवसर, नये लोगों से मिलकर नयी-नयी बातों को सीखने जानने का मौका मिलता है तो बहुत अच्छा लगता है। अब मन से डर खत्म हुआ है। कहीं भी अकेले जा सकती हूं। बिल बाउचर बनाने के साथ-साथ रिपोर्ट लिखने की क्षमता में विकास हुआ है। पहले मैं बहुत कम बोलती थी पर संस्था से जुड़ने के बाद अपनी बातों को रखने का हिम्मत आया है। अब अपनी बातों से लोगों को समझा पाती हूं। हां समाज परिवर्तन के कार्य में चुनौतियां तो बहुत है परंतु सूझ-बूझ से अगर कार्य किया जाए तो चुनौतियों से हम निपट सकते हैं।

मेरे अंदर काफी बदलाव आया है। सीखने की कोई उम्र सीमा नहीं होती है। मेरे कदम बदलाव की ओर आगे बढ़ चुके हैं। क्या आप इसमें मेरा साथ देंगे? मुझे आशा ही नहीं पूरा विश्वास है कि सबों का सहयोग अवश्य मिलेगा। ■

एकल मां - मौत भी तुझसे हारी है

मनोनित रेबेका तोपनो

''किसी भी मनुष्य की जिंदगी में विपत्ति कभी बताकर नहीं आती है। जब विपत्ति चारों ओर से आती है तो अधिकांश मनुष्य अपना आपा खो देते हैं। महिला जब अकेली मां हो तो उसे और भी कठिनाईयां झेलनी पड़ती हैं। बहुत कम लोग ही ऐसे होते हैं जो कठिनाईयों के आने से जल्द घबराते नहीं हैं, बल्कि स्थिर मन से परिस्थितियों का आकलन कर उसको सुलझाने का प्रयास करते हैं। इससे उनके मन में मजबूती आ जाती है। परिस्थिति चाहे कैसी भी हो, उसे लगने लगता है कि सभी लोग उसके साथ हैं। मेरी भी स्थिति कुछ इसी तरह की हुई थी। पर समय के साथ- साथ मेरे सभी घाव भरते गए और मैं अपने - आप में काफी मजबूत होती गई। कहते हैं न कि जिंदगी हर कदम एक नई जंग है।''

मैं मनोनित रेबेका तोपनो, मेरे पिता का नाम मार्शल तोपनो एवं मां का नाम शिलवंती तोपनो है। मेरा जन्म खूंटी जिले के तोरपा प्रखंड अंतर्गत निचीतपुर गांव में हुआ था। मेरे पिताजी सेना में थे, वहां से सेवानिवृत होकर सी.सी.एल., बनियाडीह, गिरिडीह में सिक्योरिटी गार्ड के रूप में काम किए। मां गृहिणी है। पांच भाई बहनों में मैं सबसे बड़ी हूं। मेरी शिक्षा-दीक्षा क्रमशः कार्मेल स्कूल गिरिडीह, सर जे. सी. बोस, गिरिडीह और राम कृष्ण महिला कॉलेज, गिरिडीह से हुई है।

यूं तो मेरे पिताजी सरकारी नौकरी में तो थे पर शराब के लत की वजह से परिवार को बहुत ही कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। मां बहुत मुश्किल से घर चला पाती थी। कई बार पैसों की कमी हो जाती थी। पर्व-त्यौहारों में हमारे लिए मां स्कूल ड्रेस ही खरीदती थी और बच्चे जब रंग बिरंगे कपड़े पहनते तो हमें स्कूल ड्रेस पहनने को मिलता था। हम सभी भाई बहन बहुत गुस्सा करते थे। पर अब लगता है कि अगर मां हमारे लिए रंग - बिरंगे कपड़ों की जगह स्कूल ड्रेस न देती तो आज हम लोग पढ़-लिख नहीं पाते और अपने पैरों पर खड़े नहीं हो पाते। उनके खुद के पास भी बहुत कपड़े नहीं होते थे। वो पुरानी साड़ी में ही पर्व-त्योहार गुजार लेती थी। लेकिन मेरी मां पढ़ाई के मामले में बहुत ही क्लियर थी। पढ़ाई-लिखाई से संबंधित मामलों में मां ने कभी पैसे की कमी नहीं होने दी। मांगने

पर कहीं से भी इंतजाम कर ही देती थी, पर ज्यादा दिन ये सब हमने नहीं झेला।

एक दिन मां ऑफिस गई और अधिकारियों से बात की कि मेरे पिता सारा पैसा पीने में ही खर्च कर देते हैं। घर चलाने के लिए पैसा नहीं देते हैं, तो वहां के अधिकारियों ने तय किया कि जिस दिन सैलरी मिलेगी उस दिन मां को भी बुला लिया जायेगा। अब जिस दिन सैलरी मिलती थी मां और बाबा को लेने जीप घर आ जाती थी और रु.1000/- (एक हजार रुपए) पिताजी को देकर बाकी सारे पैसे मां को दिया जाने लगा। इसके बाद घर की आर्थिक स्थिति तो थोड़ी सी सुधरी पर घर में कलह शुरू हो गया। पैसे के लिए मां बाबा के बीच आपस में झगड़ा होने लगा, घर से सुख-शांति गायब सी हो गई। फिर जब हम बच्चे कुछ बड़े हुए तो लड़ाई झगड़ा थोड़ा कम हुआ।

ग्रेजुएशन करने के बाद मुझे बाल विकास फाउंडेशन के एक कार्यक्रम में जाने का मौका मिला, उस समय यह संस्था 'स्टेट प्रोग्राम फॉर एलीमेंटरी एजुकेशन डेवलपमेंट' प्रोग्राम के तहत गिरिडीह में बच्चों का सर्वे एवं हर सरकारी स्कूल के लिए ग्राम शिक्षा समिति के गठन का कार्य कर रही थी। फिर कुछ समय मैंने इस संस्था में जुड़कर काम भी किया।

फिर जागो फाउंडेशन या प्रगति केंद्र ठीक-ठीक याद नहीं है (गिरिडीह की संस्था) के द्वारा जुड़ाव के संपर्क में आई। जुड़ाव में मैं कार्यकर्ता निर्माण प्रशिक्षण कार्यशाला से जुड़ी। यह कार्यशाला जितना मुझे याद है, उसके अनुसार शायद 2004 में हुई थी उसी कार्यशाला में मुझे बेरना दी, सीमा दी, मनोरमा दी और घनश्याम दा जैसे लोगों से मिलने का मौका मिला। इस कार्यशाला के दौरान बहुत सारी चीजें सीखने को मिली जो स्कूली जीवन एवं महाविद्यालय की पढ़ाई से बिल्कुल भिन्न थी। ग्राम सभा शब्द से परिचय भी उसी समय हुआ।

बेरना दी, मनोरमा दी और सीमा दी हमें सिखाती थी। उन्हें देखकर लगता था कि इनके जैसा बनना है। फिर घनश्याम जी की बातों का ऐसा असर हुआ कि मुझे लगने लगा संस्था में ही काम करना है ताकि अपने लोगों के लिए जो वंचित है, जिन्हें मदद की आवश्यकता है उनके लिए समाज में अपना योगदान दे सकूँ। फिर कुछ समय बाद पता चला कि गिरिडीह जिले के गाण्डेय ब्लॉक में उदयपुर पंचायत हेतु एक सामुदायिक कार्यकर्ता की आवश्यकता है। मेरा ग्रेजुएशन हो चुका था। घर से आना जाना करके काम करना संभव नहीं था इसलिए मैंने चेंगरबाद गांव में ही एक रूम किराये पर ले लिया। यह घर संताल आदिवासियों का था। गृहस्वामी का नाम तो याद नहीं है। उस घर की बेटी मोनिका टुडु मेरी दोस्त बन गई। उसके साथ ही हमलोग गाँव का विजिट किया करते थे। लोगों के साथ मिलना, बातचीत करना, उनकी समस्याओं को सुनना, महिला समूह से मिलना, समूह का निर्माण करना मेरे काम का हिस्सा था। यह सब करते हुए मुझे मजा आने लगा। बीच-बीच मां आगे की पढ़ाई करने को कहती रहती थी। लेकिन मैंने उनकी एक नहीं सुनी। मुझे जुड़ाव संस्था के साथ काम करना अच्छा लगने लगा। घूमते फिरते लोगों से बात करते मुझे रु. 2500 मिल जाता था। यह मेरे लिये बहुत था। पहली बार जब मुझे पैसा मिला तो मैंने मां के लिए साड़ी, घर के लिए मिठाई, राशन और मां के साथ अपर बाजार गिरिडीह से चावल की बोरी खरीदी। यह सब करके मुझे बहुत अच्छा महसूस हुआ। मुझे लगने लगा अब मैं बड़ी हो गई हूँ, तो मुझे घर के खर्चों में माँ की मदद करनी चाहिए। माँ को मैंने अभावों में गुजारा करते देखा था, साड़ी तो वह अपने लिए बहुत मुश्किल से खरीदती थी। घर की जरूरतों को ही बहुत मुश्किल से पूरी कर पाती थी।

मैंने यहाँ काम करते हुए संथाली भाषा सीखी जो अब मुझे अपने काम में मदद करता है। इसके बाद 2005 में झारखंड यात्रा का आयोजन किया गया था इस यात्रा के दौरान झारखंड के 22 जिलों की यात्रा की गई। इस यात्रा में लगभग 80 लोगों की टीम भाग ली थी। इतनी बड़ी टीम को मैनेज करना, खाना-पीना से लेकर सारी सुविधाओं का ख्याल रखना बड़ा काम था, पर अनुभवी लोगों के द्वारा यात्रा सुव्यवस्थित तरीके से संपन्न हो सकी। इस दौरान बहुत कुछ सीखने को मिला जैसे यहाँ गाना, नाचना, माइक में बोलना। इस यात्रा में एक सांस्कृतिक टीम भी था जिसका काम था

पड़ाव पर पहुंचते ही गाना गाना और नाटक का मंचन करना। मैं भी इस टीम का हिस्सा थी, साथ ही रिपोर्टिंग की दोहरी जिम्मेवारी भी ले रखी थी। रिपोर्ट लिखने के लिए मुझे अरुण विनायक जी का मार्गदर्शन मिलता रहता था। यात्रा, नाटक और साथ में रिपोर्टिंग करते करते थक जाती थी पर जितना जिम्मा ले रखा है तो उसको पूरा करना ही था, सो लगी रहती थी।

यात्रा में एक रिपोर्टिंग टीम भी थी जिसमें रिपोर्टर और फोटो वीडियोग्राफी की टीम थी। उस टीम के साथी विजय गुप्ता नाम के शख्स भी बीच-बीच में मेरी मदद किया करते थे। ऐसे सब लोग एक दूसरे की मदद किया करते थे। यात्रा के दौरान जिस बस में मैं थी, उसमें पीछे की तरफ चूड़ा से भरा हुआ एक बोरा रखा हुआ था जब भूख लगती थी बारी-बारी से हम लोग बोरा के पास जाकर चूड़ा फांक लिया करते थे। यात्रा में रहते हुए धैर्य रखना सीख गई थी। न समय पर खाना मिलता न पानी। सफर में थकान के मारे भी बुरा हाल हो जाता था। परेशानियां भी बढ़ रही थी पर गंतव्य पर पहुंचने की खुशी उन सभी परेशानियों पर भारी पड़ रही थी। यात्रा में सिद्धू दा, मार्डी दा, अरुण विनायक, मुन्नी हांसदा, एमेलिया हांसदा, घनश्याम दा जैसे लोगों के भाषण को सुनकर शरीर में एक नई ऊर्जा भर जाती थी। एनर्जी आ जाता था और थकान गायब। जहां हम पहुंचने वाले होते यात्रियों के खाने-पीने की व्यवस्था वहां के ग्रामीण एवं जुड़ाव के कार्यकर्ता मिलकर किया करते थे। यह स्थान किसी कार्यकर्ता का कार्यक्षेत्र होता था।

फिर ज्यादा दिनों तक मैंने संस्था में काम नहीं किया, क्योंकि मेरी शादी हो गई और मुझे रांची शिफ्ट होना पड़ा। रांची में भी मैं महिलाओं के साथ समूह बनाकर महिला समूह चला रही थी। लेकिन मैं अपने घर परिवार में व्यस्त हो गई। फिर दोनों बच्चे हुए तो मैं उनकी परवरिश में लग गई। बच्चे जब थोड़े बड़े हुए तो हमने स्टूडियो खोला क्योंकि पति फोटोग्राफर थे। मैं स्टूडियो का बेसिक काम जैसे फोटो कॉपी करना, पासपोर्ट फोटो बनाना, फोटो खींचना सीख कर स्टूडियो में बैठने लगी। पति बाहर फोटोग्राफी और वीडियोग्राफी के लिए जाया करते थे। मैं घर और स्टूडियो दोनों संभालती थी। फिर कुछ समय बाद घर में एक सहायक और स्टूडियो में भी एक सहायक को रखा। इससे काम थोड़ा आसान हो गया। अब तक हमने रांची में जमीन खरीद कर दो रूम का एस्बेटस शीट वाला घर बना लिया था। हम लोग वहां शिफ्ट हो गए।

सबकुछ ठीक चल रहा था। शादी के 9 वर्षों बाद मेरे पति का देहांत हो गया। उस वक्त मेरी उम्र 35 वर्ष थी। मेरा बड़ा बेटा 8 वर्ष एवं छोटा 4 वर्ष का था। घर में कोई जमा पूंजी नहीं थी। हमने कोई बचत भी नहीं कर रखी, क्योंकि जमीन खरीदने एवं घर बनाने में ही सारा पैसा खत्म हो चुका था। बस एलआईसी से रु. 100000 मिलना था जो याद तो नहीं है पर तीन चार-माह बाद मिल गया। पति के देहांत के बाद ससुराल वालों ने 6 माह तक हर महीने रु. 5000 की मदद देने की बात कही, जो उन्होंने दिया भी और साथ में कहा कि 6 महीने तक कोशिश करिए अगर दिक्कत होगा तो ससुराल में आकर रहिए। यह बात मेरे देवर या सास ने नहीं कहीं मेरे नन्दोसी ने कही। इसलिए मैंने अपना घर जो रांची में है, रहना पंसद किया।

फिर रांची वाला घर बेच देने का प्रस्ताव भी घरवालों की तरफ से आया लेकिन मैं इसके लिए तैयार नहीं थी। इस वजह से घर वाले नाराज भी हुए। ऐसे कठिन समय में मेरी बहने और मेरी मां आकर मेरे घर में रहा करती थी और हमें संभालती थी। अब मेरे ससुराल से कोई मदद नहीं मिल रहा था। अब जो करना था अपने दम पर करना था। इसी तरह अभाव में कुछ दिन रहे। मायके से थोड़ी बहुत मदद मिल जाती थी। बच्चों की पढ़ाई के लिए और घर को बढ़िया से चलाने का ख्याल मेरे दिमाग में आता रहता था। स्टूडियो मैं अब भी चला रही थी लेकिन पति के जाने के बाद परिस्थितियां बहुत ही बदल गई। जो रूम हमें 700 रुपए में मिला था उसका किराया 2000 कर दिया गया। सिर्फ पासपोर्ट और फोटोकॉपी से घर चलाने जितना पैसा कमाना मुश्किल लग रहा था। काम में बहुत ज्यादा परफेक्ट

भी नहीं थी। चार शादियों में फोटो वीडियोग्राफी का काम मिला, पर सभी काम में शिकायत आ गया। यह काम मैंने एक साल तक कुछ लड़कों को साथ लेकर किया, वे हमारे यहाँ ही काम किया करते थे। वे भी काम को बहुत अच्छी तरह नहीं सीख पाए थे इसलिए बहुत दिक्कत आ रही थी। इस समय कुछ स्टूडियो वालों ने मुझसे अपने स्टूडियो में काम करने को लेकर बात भी किए पर मुझे ज्यादा काम नहीं आता था अतः संकोचवश मैंने मना कर दिया। फिर कुछ फोटोग्राफर साथियों ने मुझे सलाह दिया कि भाभी आप कुछ और काम कर लीजिए। यह काम आपके लिए बहुत मुश्किल होगा। मुझे भी कुछ समय बाद ऐसा ही लगने लगा। कुछ साथी ऐसे भी थे जो बोलते थे कि आप हमारे साथ चलकर काम सीखिए। विजय जी का बनाया हुआ 'ब्रांड स्पेक्ट्रा' डिजिटल स्टूडियो को ऐसे खत्म होने मत दीजिए। लेकिन दो छोटे बच्चों को छोड़कर रात में घर से निकलना संभव नहीं था। अब लगता है कि मैं कोशिश करती तो यह काम बहुत मुश्किल नहीं था। मैं स्टूडियो बंद करने का फैसला कर चुकी थी सो मैंने इसे बंद कर दिया।

स्टूडियो बंद करने का दूसरा कारण यह भी था कि दोनों बच्चे स्कूल से आकर मेरे साथ स्टूडियो में ही रहते थे इसलिए कि दोनों छोटे थे। उस समय शाम के समय पुंदाग के लिए ऑटो नहीं मिलती थी। जब हम लोग वापस लौटते थे तो एक बच्चे को गोद में लेकर दोनों बच्चों का स्कूल बैग, और एक थैला जिसमें दोपहर के भोजन का लिए टिफिन होता था मैं टांग लेती थी और हम लोग पैदल ही 3 किलोमीटर चलकर आते थे। उस समय रास्ते में एक व्यक्ति बहुत बुरी नजर से हमें देखता रहता था। यह एक दिन की बात नहीं थी। हर रोज वह रास्ते में रहता और घूरता रहता। मुझे डर सा लगने लगा था। कभी-कभी तो एक दो लोग स्टूडियो में आकर बैठे रहते थे। वे लोग सिगरेट पीते थे और मेरे मना करने पर भी वे नजरअंदाज कर देते थे।

पति के गुजरने के बाद मैं खुद को बहुत ही असहाय महसूस करती थी। कोई परेशान करता, या फिर कोई कुछ बोलता, घर में कुछ घट जाता तो परेशान हो जाती थी और रोती। अपने किस्मत को कोसती थी। रोने के अलावा मैं कुछ और नहीं कर पाती थी। एक डर सा लगा रहता था। अब बच्चों का क्या होगा। घर का काम तो मुझसे होता नहीं था ऊपर से अब दोहरी जिम्मेवारी। घर में दोनों बच्चों को तो मां बहने कभी-कभी आकर संभाल दे रही थी लेकिन घर चलाने के लिए अब मुझे काम करना ही था। उस समय किसी के माध्यम से पता चला कि सर्वे का काम होने वाला है। मेरी छोटी बहन आतेन से पता चला कि कुछ संस्थाएं सर्वे के काम के लिए कुछ महिलाओं को हायर कर रही हैं। यह काम मेरे लिए नया था। मैंने इस तरह का कोई काम नहीं किया था। यह काम तीन महीने के लिए था। मैं घर से बाहर जाना चाहती थी क्योंकि घर में रहकर मैं डिप्रेशन का शिकार हो रही थी। 3 महीने का काम मिला हम लोग हजारीबाग, रामगढ़ और रांची में सर्वे का काम किए। काम के एवज में महीने के 14000 मिल जाते थे।

काम खत्म होने के बाद मैं घर वापस लौटी। वर्ष 2015 की बात है इसी दौरान अश्वनी कुमार पंकज एवं वंदना टेटे के सहयोग से एक फेलोशिप के लिए एप्लाई किया। मेरा सिलेक्शन भी हो गया। इंटरव्यू दिल्ली में हुआ था। मुझे मुंडारी के गीतों और साहित्य के बारे में बहुत जानकारी नहीं थी पर तर्क के सहारे मैंने उन्हें जवाब दिया। इस काम को पूरा करने के लिए मुंडा गांवों का दौरा किया। मुंडारी कहानी और गीतों का संग्रह भी किया। मुंडाओं की जीवन पद्धति एवं स्वशासन व्यवस्था को समझने का मौका मिला। यहां से 2 वर्ष का फेलोशिप मिला जिसमें रु.10000 प्रतिमाह मिलते थे।

फिर 2017 में एक रिसर्च काम के माध्यम से संवाद से जुड़ी। विषय था- जैव विविधता। उस समय कुछ महीनों तक मुझे 17000 रूपये महीना मिलता था। इसके बाद संवाद के दूसरे प्रोजेक्ट से जुड़ी। इसका कार्य क्षेत्र रांची जिले के इटकी ब्लाक अंतर्गत 4 पंचायतों के 20 गांव में था। इस प्रोजेक्ट में काम करते हुए मैं गांव की स्थिति को समझी कि कैसे आदिवासी समुदाय रहते हैं और रहन-सहन का स्तर कैसा है। शिक्षा एवं सामूहिकता आदि को जानने, समझने का मौका मिला। इस काम से मुझे रु.11000

मासिक मिलने शुरू हुए, अब महीने की एक निश्चित आमदनी थी। घर परिवार चलाना थोड़ा आसान हो गया था। एक असुरक्षा का जो भाव था, वो भी खत्म हो गया था। बच्चों की पढ़ाई की व्यवस्था भी ठीक-ठाक हो गई थी। यह 2019 की बात है। तब से लेकर आज तक संवाद में कार्यरत हूं। संवाद से आर्थिक और मानसिक स्तर पर काम करते हुए काफी सहयोग मिला।

जब कोरोना महामारी आई, तब लॉकडाउन के कारण कार्यक्षेत्र में नहीं जा रहे पा रहे थे। बस फोन पर कार्यकर्ता और ग्रामीणों के संपर्क में थे। उनको क्या झेलना पड़ रहा है, सरकार द्वारा क्या सुविधा दी जा रही है, क्या एहतियात बरतना है यही सब बातें होती थी। लॉकडाउन के समय दीपक बाड़ा जो सोशल एक्टिविस्ट है, उनके मार्फत प्रवासी मजदूर नियंत्रण कक्ष में काउंसेलर के रूप में कार्य करने का मौका मिला। इस कार्य के दौरान विभिन्न तरह के अनुभव हुए। बीच-बीच में काउंसलर्स की काउंसलिंग भी होती रही। काम के दौरान एक संतुष्टि महसूस हो रही थी की चलो आपात स्थिति में मैं कुछ तो काम कर सकी।

काउंसेलिंग के दौरान हमें बताया जाता था कि लोगों से कैसे बात करनी है। हमें यह बताया जाता था कि सब हमारे कंट्रोल में नहीं है। इसलिए आप लोग दुखी न हो। आप जो कर सकते हैं जो आपके बस में है उसे पूरी शिद्दत से करिए। दुख होता ही है पर उसे अपने ऊपर ज्यादा हावी होने न दें। दुखी होने की आवश्यकता नहीं है। जब भी कोई आपदा आती है लोग मरते ही हैं। बचावकर्मी बचाव करते हैं। अपने को खुश रखने के लिए कोशिश करें और ज्यादा से ज्यादा लोगों से बातचीत करें।

जो भी हो इस काम को करते हुए झारखंड की मजदूरों की वास्तविक स्थिति से अवगत हुई - लोग कितने अभाव में जी रहे हैं, कितनी संख्या में पलायन कर रहे हैं, क्यों कर रहे हैं, यह सब जानने समझने का मौका मिला। दोबारा से परिस्थितियां जब सही हुई मैं वापस संवाद के कामों में जुड़ गई। और एक बात का मैं यहाँ जिक्र करना चाहती हूं। मुझे आदिवासी व्यंजन बनाने का बेहद शौक है। मैं नए-नए प्रयोग करती रहती हूँ। लॉकडाउन के दौरान भी मैंने काफी प्रयोग किया। मडुआ रोटी, मडुआ डम्बू करते-करते आज मैं मडुवा लड्डू तक पहुंची हूं, जिसका अभी लोगों के बीच में बहुत क्रेज है और डिमांड है। इसके बारे में बातें फिर कभी होंगी। आज के लिए इतना ही।

आज मैं जो कुछ भी हूं, संवाद के वजह से ही हूं। संवाद बीच-बीच में बहुत सारे कार्यकर्ता निर्माण प्रशिक्षण और अन्य विषयों पर भी समय-समय पर प्रशिक्षण दिया है। किसी भी तरह की परेशानियों का सामना करने के लिए मैं मजबूती से डटी रहती हूं। जहां मैं रहती हूं, वहां भी टोले मोहल्लों में भी अगर किसी को कोई परेशानी होती है, तो लोग एक बार आकर मुझसे पूछते जरूर हैं। कभी-कभी मोहल्ले में जो बैठकें होती हैं महिलाओं को बुलाएं या ना बुलाए मुझे जरूर बुलाते हैं।

मैं पीछे मुड़कर देखती हूं तो खुद को एक मजबूत महिला के रूप में देखती हूँ। आर्थिक रूप से बहुत सक्षम तो नहीं कहूंगी लेकिन लगता है कि किसी भी तरीके से किसी भी परिस्थिति में मैं सरवाइव कर लूंगी। अब मुझे डर नहीं लगता है, हां मुझे थोड़ा गुस्सा ज्यादा आता है जिस पर कंट्रोल करने की जरूरत है। यह शुरू से नहीं था। मैं समझती हूं कि मेरे ऊपर दोहरी जिम्मेदारी है और कभी कभी परिस्थितियां अपने मुताबिक नहीं रहती हैं तो बुरा लगता है और मन चिड़चिड़ा हो जाता है। इस वजह से मुझमें गुस्सा रहता है।

कुछ महिलाएं जो मुझे देखती हैं वह कहती हैं कि आपके जगह कोई और होता तो वह बिखर जाता लेकिन आपने सब कुछ संभाल लिया। मैं उन्हें जवाब देती हूं कि मेरे दो बच्चे हैं उनके लिए तो जीना है, उनके लिए काम तो करना है, संभलना तो पड़ेगा ही कमजोर होने से बर्बाद ही होंगे। आज मेरी भी एक पहचान है, वो सिर्फ मेरे अकेले के दम पर नहीं है। मेरी मजबूती के पीछे मेरी मां-बहनें, संवाद संस्था, मेरा समाज, मेरा मोहल्ला, फोटोग्राफर संगठन और मेरे दोस्त हैं जो मुझे हमेशा यह एहसास दिलाते हैं कि वे मेरे साथ हैं। चाहे परिस्थिति कैसी भी हो, आज मुझे हर समय महसूस होता रहता है कि आप सब लोग मेरे साथ हैं। ■

अपनी मुक्ति की लड़ाई खुद ही लड़नी है

मिनीला बास्की

"पिछले चालीस-पचास वर्षों में महिलाओं की स्थिति में बहुत बड़ा परिवर्त्तन आया है। शिक्षा, आर्थिक स्वतंत्रता, अपनी अस्मिता की पहचान, बड़े-बड़े पदों पर काम करने से उपजे आत्मविश्वास ने बिल्कुल नयी महिला को जन्म दिया है। गांव, शहर, महानगर हर जगह महिलाओं के जीवन में राजनीति, अर्थनीति और संचार की नई तकनीक के असर से कई बदलाव आए हैं। और आ रहे हैं। महिलाओं ने वर्त्तमान स्तर को प्राप्त करने के लिए जो सराहनीय प्रयास किया है उसको देखकर मैं भी अपनी जिंदगी में कुछ करना चाहती थी पर आर्थिक अभाव हमेशा दो कदम पीछे धकेल देता और मैं निराश हो जाती। पर अंत में मैंने भी कुछ करने की ठानी, क्योंकि परिवार को चलाने के लिए मुझे कुछ तो करना ही था।"

मेरा जन्म पाकुड़ जिला के नारायणगढ़ गांव में हुआ। मेरी मां का नाम मालती मुर्मू और पिता का नाम बरसन बास्की है। हमलोग पांच बहन और दो भाई हैं। मेरा बचपन बहुत ही गरीबी में बीता। खेती के अलावा आय का कोई दूसरा स्त्रोत नहीं था। मेरी पढ़ाई सरकारी विद्यालय से हुई। विद्यालय जाने के पूर्व गाय चराना और विद्यालय से लौटने के पश्चात गाय चराना मेरी दिनचर्या का हिस्सा था। जब थोड़ी बड़ी हुई तब पढ़ाई के साथ-साथ घर का सारा काम करना पड़ता था। हाई स्कूल की पढ़ाई के समय तो पढ़ने का समय ही नहीं मिलता था। चूल्हा में खाना चढ़ाकर जो समय मिलता उसी में पढ़ाई करती। जब खेती के समय खेत में काम करना होता था तो स्कूल जाते ही नहीं थे। ऐसे ही किसी तरह पढ़ाई चलती रही। मैंने प्रोजेक्ट उच्च विद्यालय बड़कियारी से 2004 में मैट्रिक पास किया। आगे एम.ए. तक की पढ़ाई सिदो कान्हू विश्वविद्यालय, दुमका से पूरी की।

इंटर पास करने के पश्चात मैं एक कंपनी से जुड़कर कार्य करने लगी। मानदेय के रूप में 1000 रु. मिलता था। वर्ष 2013 में मेरी शादी हो गई। यहां भी घर का सारा काम मुझे ही करना पड़ता था। हालांकि मेरी एक ननद घर पर ही रहती थी। मेरी गोतनी तो मुझसे ठीक ढंग से बात भी नहीं करती थी। इतना काम करने के बावजूद मुझे ठीक ढंग से खाना भी नहीं मिलता था। इसलिए जब मेरा बच्चा होने वाला था तो मैं मायके आ गई। बच्चा होने के पन्द्रह दिन बाद ही मेरी सास मुझे वापस मेरे ससुराल सुसनीबाद ले आई। चार दिन भी नहीं बीते कि मुझे अलग कर दिया गया। हम दोनों पति-पत्नी मजदूरी कर किसी तरह अपना गुजारा करने लगे। जब बच्चा छः महीने का हुआ तो मैं एक संस्था में जुड़कर कार्य करने के लिए सोची। परंतु यहां भी भैंसुर ने अपनी चालबाजी दिखाई। संस्था वालों को बोला कि इसका छोटा बच्चा है तो वह काम नहीं कर पायेगी। और गोतनी को काम पर लगा दिया। दुःख तो बहुत हुआ पर मन मसोस कर रह गई।

उसके बाद पाकुड़ जिला के आमड़ापाड़ा प्रखंड के सरकारी विद्यालय के ड्रॉप आउट बच्चों को पढ़ाने लगी। मुझे महीना 4500 रु. मिलने लगा। यहां मैंने करीब तीन साल तक कार्य किया। फिर जब दूसरा बच्चा होने को था तो वापस सुसनीबाद (ससुराल) आ गई।

जब मेरा छोटा बच्चा 4 महीने का था उसी समय मुझे संवाद संस्था के बारे में रफीक से पता चला। मैंने उस पर कुछ खास ध्यान नहीं दिया। दुबारा जब उन्होंने मेरे काम करने के बाबत मेरे पति से पूछा तो मेरे पति एवं मैंने हां बोल दिया। फिर संवाद के बारे में जानकारी प्राप्त की और कार्य करने के लिए आवेदन दिया। लिखित एवं मौखिक परीक्षा देने के बाद मेरा चयन संवाद में हो गया।

वर्ष 2018 से मैं संवाद से जुड़कर कार्य करने लगी।

संवाद से जुड़कर मैंने बहुत सी जानकारी प्राप्त की। ग्रामसभा, उनकी स्थायी समिति आदि के बारे मुझे कुछ ज्ञान नहीं था। यहां जुड़ने के बाद प्रशिक्षण एवं कार्यशालाओं के माध्यम से इन पर समझ बनी। पुराने एवं अनुभवी साथियों के सहयोग से मैं अपना कार्य करने लगी।

संस्था से जुड़ने के बाद मेरे अंदर काफी बदलाव आया। पहले मैं लोगों से बात नहीं कर पाती थीं, अब बेझिझक बात करती हूं। कहीं भी अकेले आ जा सकती हूं। आदिवासी हूं, पर आदिवासी जीवन दर्शन को नहीं जानती थी। यहां से जुड़ने के पश्चात इन सब चीजों से साक्षात्कार हुआ। जल, जंगल, जमीन की अहमियत क्या है, इसे जाना। अपने अंदर आत्मविश्वास भी आया कि मैं भी कुछ कर सकती हूं। मुद्दों को समझने एवं उसके विश्लेषण की क्षमता बढ़ी। कार्यक्षेत्र में सामाजिक कार्यकर्त्ता के रूप में मेरी पहचान बनी।

मैं आगे भी संवाद से जुड़कर कार्य करना चाहूंगी, ताकि मेरी भी क्षमता विकास का सिलसिला चलता रहे। ■

एक मां की संघर्ष-गाथा

वीणा वर्मा

''मां शब्द अपने आप में परिपूर्ण है। दुनिया में हम चाहे कितने भी रिश्ते से क्यों नहीं बंधे हुए हों, लेकिन मां के बगैर हमारा जीवन अधूरा ही रहता है। हर रिश्ते को आप से कुछ पाने की आस रहती है लेकिन एक मां अपनी संतान को जीवनपर्यन्त सिर्फ देना जानती है। मां भूखी सो सकती है लेकिन कभी भी अपने बच्चे को भूखा नहीं रख सकती है। चाहे उसके लिए उसे कुछ भी करना क्यों न पड़े। अपने बच्चे के भूख की खातिर इंसान क्या वह ईश्वर से भी लड़ सकती है। मां की ममता अपने बच्चों की खातिर जीने का जुनून रखती है। एक मां की ममता अपने बच्चों के लिए क्या-क्या नहीं करवाता है। किसी ने ठीक ही कहा है कि मां अपने बच्चों की खातिर हर मुश्किलों से लड़ जाती है। मैंने भी अपने बच्चों की परवरिश के लिए घर की दहलीज पार की। काम की तलाश में इधर-उधर भटकी। कभी स्कूल में पढ़ाया तो कभी सर्वे का काम किया। लंबे संघर्ष कर आज एक मुकाम पर पहुंची हूं। बच्चों को भी उनके मंजिल तक पहुंचाने में कोई कसर नहीं छोड़ी।''

मां जलेश्वरी वर्मा एवं पिता बसंत लाल वर्मा की इकलौती पुत्री मैं वीणा वर्मा हूं। मेरी मां हमेशा मुझे कहती कि तुम सबों ने आने में बहुत इंतजार करवाया क्योंकि मां-बाबा की शादी के ग्यारह साल बाद मैं पैदा हुई थी। पहली संतान होने के कारण मुझे मां-बाबा का ढेर सारा दुलार मिला। बाद में मेरे तीन भाई हुए लेकिन मेरा महत्व कम नहीं हुआ। मेरे जन्म के बाद ही पिताजी सरकारी शिक्षक बने। पिताजी कहते जब से वीणा मेरे जीवन में आई है सबकुछ अच्छा ही हो रहा है। शिक्षक होने के कारण अपने गांव चरपा के सभी बच्चों को पढ़ाई करने पर जोर देते थे। बाबूजी गणित के शिक्षक थे। रोज सुबह घर पर 6 से 7 बजे तक बच्चों को गणित पढ़ाते और फिर 7.30 बजे ट्रेन पकड़कर ड्यूटी के लिए गिरिडीह चले जाते। हमेशा ही मधुपुर में भाड़ा घर लेकर मां को अपने पास रखा ताकि अपनी नौकरी भी ठीक से कर सके और अपने छोटे भाई को अपने पास रखकर पढ़ा सके। उन्होंने बी.पी.एस. नाम से एक विद्यालय की स्थापना डॉक्टर हरीबाबू गली मधुपुर में की। विद्यालय भाड़े के भवन में चलता था। मेरी स्कूली शिक्षा वहीं से शुरू हुई। मैं बहुत छोटी थी इसलिए मेरे घर के सामने बी.डी.ओ. साहब (ब्रज किशोर) की पुत्री रूबी दीदी

मेरी ऊंगली पकड़कर ले जाया करती थी। छुट्टी के दिनों में बाबूजी बाजार घुमाने ले जाते और समोसा, मिठाई, कचौड़ी खिलाया करते थे। ड्यूटी का समय छोड़कर मैं हमेशा उनके साथ रहती।

बाबूजी ने धीरे-धीरे कुण्डू बंगला, मधुपुर में अपना खपरैल का घर बनवाया और उसमें हमलोगों को रहने के लिए ले गये। दो बड़े-बड़े कमरे और बरामदा में स्कूल चला करता। स्कूल छठी क्लास तक ही था। मैं छठी कक्षा तक बी.पी.एस. विद्यालय, कुण्डू बंगला, मधुपुर में पढ़ी। सातवीं कक्षा से मैं अंची देवी सर्राफ बालिका उच्च विद्यालय, मधुपुर पढ़ने जाने लगी। मैं जब नवीं क्लास में पहुंची तो दिन कैसे गुजर जाता था पता ही नहीं चलता था। खेलने का समय खत्म हो गया था। सुबह सात से आठ बजे तक नथुनी सर के पास संस्कृत और आठ से नौ बजे तक ढेमन सर के पास बाकी विषय का ट्यूशन पढ़ने जाया करती। गणित कभी भी मुझे एक बार में नहीं समझ आता था। सच कहें तो मैं पढ़ने-लिखने में बहुत ही कमजोर थी। दस से चार बजे तक स्कूल में पढ़ाई करती। साढ़े चार से साढ़े पांच बजे तक सिलाई-कटाई का प्रशिक्षण लेने आर्य समाज थाना रोड जाती थी। पूरे भाग दौड़ वाली दिनचर्या हो गई थी। अपने परिवार में मैट्रिक पास करने वाली मैं पहली लड़की थी। मैट्रिक पास होने पर गर्व महसूस हो रहा था। चूंकि मेरी चचेरी बहन और सहेली पूनम प्रथम श्रेणी से पास हुई तो घर वालों ने नसीहत दे डाली कि दूसरे से कुछ सीखो। पर मैं खुश थी। मैट्रिक पास कर लेना मेरे लिए बड़ी बात थी। मधुपुर महाविद्यालय में मैंने इंटर में दाखिला लिया। कॉलेज जाने के बाद से ही घर में मेरी शादी के चर्चे शुरू हो गये। कभी-कभी छुट्टियों में मैं नानी घर या अपने गांव चरपा जाती तो मेरी शादी के चर्चे शुरू हो जाते। इसी कारण मैंने नानी घर और गांव चरपा जाना छोड़ दिया। कॉलेज की पढ़ाई के साथ-साथ मैं टाईपिंग भी सीखने लगी।

फिर आमतौर पर जैसा हर लड़की के साथ होता है मेरे साथ भी हुआ। इंटर की फाइनल परीक्षा देने के बाद मेरी शादी तय कर दी गई। न ही मुझसे मेरे निर्णय के बारे में पूछा गया और न ही कुछ बताया गया। लड़का कैसा है, कहां का है, क्या करता है - मुझे कुछ मालूम नहीं था। शादी का कार्ड छपने पर मुझे इन सब बातों का पता चला। मैं काफी असमंजस में थी। मेरे राय के बगैर ही शादी तय हो गई। मैं तो लड़के का केवल पासपोर्ट साइज फोटो ही देख पायी। जयमाला के समय ही उनकी (रवीन्द्र प्रसाद वर्मा) झलक देखने को मिली।

शादी के बाद जब ससुराल पहुंची तो परिवार का माहौल कुछ अलग ही था। मेरे ससुर के कपड़े की दुकान थी। खेती बाड़ी भी थी जो घर से काफी दूर था। अतः खेती बाड़ी का कार्य ससुर के छोटे भाई करते थे। गांव की सारी संपत्ति छोटे चाचा ससुर की देख रेख में था। मेरे पति के हाथ में एक भी पैसा नहीं आता था। बचपन की पिलाई घुट्टी इन दिनों काम आई कि लड़कियों को हर हाल में एडजस्ट करना होता है सो धीरे-धीरे मैं एडजस्ट होने लगी। घर खर्च ससुर चलाते थे। ससुराल में दो वक्त ही खाना बनता था। सुबह का खाया रात तक मैं भूख से बिलख जाती थी। मेरे देवर ननद दुकान से कुछ-कुछ लाकर खाते रहते थे पर अपने पास पैसा नहीं होने के कारण मैं भूखी रहती। इन सब कारणों से मेरा मन हमेशा चिड़चिड़ा सा रहने लगा। मेरे पिताजी जब मिलने आते तो मैं रो पड़ती पर किसी से कुछ नहीं कहती। पिताजी शायद समझ गये थे इसलिए उन्होंने एक बक्से में खाने पीने का सामान, साबुन, सर्फ भर कर ला देते थे। जरूरत पड़ने पर मां भी हाथ में कुछ पैसे दे देती थी। इससे किसी तरह मेरा गुजारा तो हो जाता पर इससे मेरे पति को कोई फर्क नहीं पड़ता।

जब मेरी बेटी ने जन्म लिया तो मेरे ऊपर काम करने के प्रेशर के साथ-साथ अपनी आर्थिक जरूरतों को भी पूरा करना था। मैं भूखे सो सकती थी, हर तकलीफ बर्दाश्त कर सकती थी, परंतु बच्ची को तो भूखा नहीं रख सकती थी। मैंने घर की दहलीज लांघी और एक प्राइवेट स्कूल में पढ़ाने लगी। घर बाहर दोनों जगहों की जिम्मेवारी उठाना कठिन तो लगता पर बच्ची का ध्यान आता तो सब कुछ

भूलकर फिर कार्य करने लगती। वर्ष 1998 में मेरे बेटे का जन्म हुआ तो मुझे स्कूल छोड़ना पड़ा। दो बच्चों की परवरिश, घर और बाहर का काम करना कठिन हो गया। तब मेरे पति रोलिंग मिल में काम करने लगे। इससे घर की जरूरतें तो पूरी हो जा रही थी पर पति का काम खतरों से भरा था। वे हमेशा ही हाथ पैर जलाकर घर आते परंतु दूसरे विकल्प के बिना काम छोड़ा भी नहीं जा सकता था। मैं हमेशा चिंतित रहती। फिर हालात को देखते हुए घर से बाहर कदम रखा और स्कूल में पढ़ाने लगी। लेकिन मन में कुछ अलग करने का ख्याल आते रहता। फिर मैं सरकारी योजना ''स्पीड'' का कार्य स्थानीय संस्था से जुड़कर करने लगी। इस कार्य में माह में 15-20 दिन काम मिलता। यह कुछ जम नहीं रहा था। एक प्रशिक्षण के दौरान 'जुड़ाव' संस्था के निदेशक घनश्याम जी से मुलाकात हुई। मुझे काम की नितान्त आवश्यकता है यह जानकर उन्होंने मुझे 'जुड़ाव' से जोड़ा। मैं 'जुड़ाव' से जुड़कर कोडरमा में कार्य करने लगी। कोडरमा में कार्य करने में काफी दिक्कतों का सामना करना पड़ता पर आर्थिक मजबूरी के कारण काम करती रही। एक साल काम करने के बाद संस्था की विभिन्न गतिविधियों एवं प्रक्रियाओं से जुड़ी। उसी दरम्यान झारखंड यात्रा पर जाने का मौका मिला। यात्रा के दौरान झारखंड को समझने का अवसर मिला। 'वर्ल्ड सोशल फोरम' जैसे बड़े कार्यक्रमों में भी जाने का अवसर मिला। संस्था से जुड़कर मेरे बौद्धिक एवं नेतृत्व क्षमता का विकास होने लगा। संस्था से लंबे समय तक जुड़कर कार्य करने के बाद ग्राम सभा की समझ बनी। महिला अधिकार, लैंगिक समानता, पर्यावरण, ग्रामीणों के अधिकार जैसे मुद्दों को जाना, समझा। पंचायत चुनाव कराने को लेकर चले अभियान में भी भाग लिया।

संस्था से जुड़ने से मेरे में भी राजनीतिक चेतना का विकास हुआ। मुझे लगने लगा कि अगर समाज में बदलाव लाना है तो जनप्रतिनिधि बनने से यह कार्य थोड़ा सुगम हो सकता है। अतः पहली बार जब 2010 में झारखंड में पंचायत चुनाव हुआ। मैं उदनाबाद पंचायत, गिरिडीह सदर से मुखिया प्रत्याशी के रूप में चुनाव में खड़ी हुई। चुनाव में हार गई पर इसका लाभ यह हुआ कि पूरे पंचायत में सशक्त महिला के रूप में मेरी पहचान बनी।

चुनाव के बाद 'संवाद' से जुड़कर ग्राम सभा सशक्तिकरण, टिकाऊ आजीविका, महिला अधिकार आदि मुद्दों पर सघन रूप से जागरूकता का कार्य संस्था के माध्यम से करने लगी। समाज में सामाजिक कार्यकर्त्ता के रूप में पहचान बनी। महिला स्वयं सहायता समूह बनाकर महिलाओं को घर से बाहर लाने का काम किया। महिलाएं आपस में पैसा जमा कर अपने छोटी मोटी जरूरतों को पूरा करने लगी। अब महिलायें न सिर्फ पैसा जमा करती हैं बल्कि बैठक में सामाजिक मुद्दे पर भी चर्चा करती हैं। पहले महिलाएं ग्राम सभा बैठकों में नहीं आती थी पर अब वे आती हैं और सक्रिय भागीदारी निभाती हैं तथा मुखर होकर अपनी बातों को रखती हैं। इन सबसे अपने मन को खुशी मिलती है एवं आत्मविश्वास भी बढ़ता है कि समाज के लिए कुछ कर पा रही हूं।

अब कहीं भी, कभी भी अकेले आ जा सकती हूं। प्रशिक्षणों, कार्यशालाओं से अपने अंदर मुद्दों को समझने एवं उसके विश्लेषण की क्षमता बढ़ी है। सरकारी पदाधिकारियों से डायलॉग कर अपने क्षेत्र की समस्या से उनको अवगत करा पा रही हूं। क्षेत्र के लोगों का विश्वास जीतने में भी सफलता पाई हूं। नयी-नयी बातों की जानकारी, नये नये लोगों से मिलने का मौका, अपने संपर्क का दायरा बढ़ाना यदि संभव हो पाया है तो संस्था के कारण ही। अगर मैं संस्था से न जुड़ती तो शायद परिवार चलाना तो कष्टकर होता ही अपना विकास भी नहीं हो पाता। स्व विकास की यात्रा में आत्मविश्वास भी एक महत्वपूर्ण घटक है। आत्मविश्वास आने पर आप भय एवं झिझक को पीछे छोड़ते हैं। कार्य को सुचारू रूप से कर पाते हैं। आज सबों के सहयोग से ही आगे बढ़ने का सिलसिला जारी है। यदि इसी तरह सहयोग एवं संबल मिलता रहे तो न ही ये कदम थकेंगे और न रूकेंगे। ■

मौसम अनुकूलित खेती और टिकाऊ आजीविका पर प्रशिक्षण शिविर

''मौसम अनकूलित खेती और टिकाऊ आजीविका'' विषय पर कलस्टर स्तरीय पर प्रशिक्षिण शिविर का आयोजन 'संवाद' के कार्य क्षेत्र में किया गया। ग्लोबल वार्मिंग एवं उसके कारणों पर चर्चा में यह बात उभरकर सामने आई कि हर वर्ष गर्मी बढ़ती जा रही है। सड़क एवं भवनों के निर्माण के लिए पेड़ों की बेतहाशा कटाई की जा रही है। पहाड़ पहाड़ी भी समाप्त होते जा रहे हैं। इस कारण पहाड़ों से निकलने वाले जलश्रोतों में कमी आई है एवं वर्षा भी कम हो रही है। वर्षा कम होने एवं अंधाधुंध डीप बोरिंग के कारण भूजल का स्तर भी नीचे चला गया है। रासायनिक खाद एवं हाइब्रीड बीजों के कारण फसल उगाने में भी अधिक पानी की जरूरत पड़ने लगी है। इन अनाजों को खाने से लोगों की प्रतिरोधक क्षमता भी घट गई है। लोग बीमार भी ज्यादा होने लगे हैं। इन दुष्प्रभावों से बचने के लिए हमें मौसम अनुकूलित खेती एवं पूर्वजों द्वारा की जाने वाली खेती की विधि को अपनाना होगा। मोटे अनाज जैसे मडुआ, गोंदली, ज्वार, बाजरा जैसे कम पानी में होने वाली फसलों की खेती करनी होगी। इन अनाजों के उपयोग से लोगों की प्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ेगी तथा वे बीमारी से भी बचेंगे।

टिकाऊ आजीविका के लिए खेती बाड़ी के साथ साथ पशुपालन जैसे - सूअर पालन, बकरी पालन, गाय पालन, मुर्गी एवं बत्तख पालन भी करना पड़ेगा। इससे खेती बाड़ी भी सफल होगी एवं किसानों की आमदनी भी बढ़ेगी।

महिला किसान संगठन निर्माण एवं क्षमता संवर्द्धन बैठक

दिनांक 19-20 जून, 2023 को मधुपुर में महिला किसानों की एक बैठक आयोजित की गई। इस बैठक में 16 जिलों से लगभग 60 महिलायें शामिल हुई तथा महिला को किसान का दर्जा मिले एवं इसके ऐतिहासिक पहलुओं पर चर्चा में भाग लिया। यह बात आयी कि बारहवीं पंचवर्षीय योजना में महिलाओं को किसान का दर्जा दिया गया है परन्तु व्यावहारिक धरातल में यह दिखता नहीं है। जबकि हम सभी जानते हैं कि खेती के विकास में महिलाओं की महत्वपूर्ण भागीदारी रही है। पहले लोग झुंड में रहते थे। फिर जब परिवार का निर्माण हुआ तो गर्भवती एवं दूध पिलाने वाली मां को घर के आसपास रहना पड़ता था। ऐसी परिस्थिति में महिलाओं ने अपने हुनर का इस्तेमाल कर धान, गेहूं, मक्का इत्यादि के बीजों से खेती किसानी करना शुरू किया। पूरे विश्व में सृजन एवं उत्पादन का कार्य महिलाओं ने ही आरंभ

किया। विकास के क्रम में ऐसी अवस्था आई कि महिलाओं का हुनर ही उनके कष्ट का कारण बना और आज महिलायें किसान का दर्जा पाने के लिए संघर्षरत हैं।

बैठक के दूसरे दिन महिलाओं ने गांव, पंचायत, प्रखंड, जिला, जोन और राज्य स्तर पर महिला किसान संगठन के निर्माण की रूपरेखा बनाई गयी एवं संगठन को सुचारू रूप से चलाने के लिए राज्यस्तरीय तदर्थ कमिटी

का गठन भी किया गया। जैविक खेती का प्रचार-प्रसार, पेयजल, सिंचाई व्यवस्था, महिलाओं के लिए रोजगार की व्यवस्था, महिलाओं द्वारा उत्पादित सामग्री की बिक्री के लिए बाजार की व्यवस्था, कॉपरेटिव निर्माण की प्रक्रिया को एकजुटता से आगे बढ़ाने का निर्णय लिया। इसके साथ ही संगठन के लिए सदस्यता अभियान चलाने तथा जलवायु संकट को देखते हुए शामिल प्रतिभागियों ने 5-5 पौधा लगाने का संकल्प लिया। साथ ही इस बात पर सहमति बनी कि संगठन को सक्रिय किया जायेगा और यह महिला किसान संगठन झारखंड की तस्वीर और तकदीर को बदलेगी।

देशज चिकित्सा पद्धति पर आधारित पारंपरिक चिकित्सकों का उत्प्रेरण प्रशिक्षण शिविर

वर्तमान समय में पर्यावरण असंतुलन के साथ-साथ अधिकांश इंसान को नित नई-नई बीमारियों का सामना करना पड़ रहा है। बड़े-बड़े अस्पतालों का इलाज महंगा तो है ही साथ ही यह भी गारंटी नहीं है कि बीमारी जड़ से खत्म हो ही जायेगी। दूसरी तरफ यह देखा गया है कि इन बीमारियों का इलाज पारंपरिक जड़ी-बूटियों से संभव है। इसके लिए केवल उन जड़ी बूटियों की जानकारी की जरूरत है। इन्हीं जरूरतों को ध्यान में रखते हुए देशज चिकित्सा पद्धति पर आधारित पारंपरिक चिकित्सकों का उत्प्रेरण प्रशिक्षण शिविर का आयोजन कोल्हान जोन के

लिए 25-26 मई, 2023 को बड़ा सिगदी, पूर्वी सिंहभूम में, संताल परगना जोन का 2-3 जून 2023 को मधुपुर में एवं उत्तरी एवं दक्षिणी छोटानागपुर की संयुक्त शिविर 17-18 जून, 2023 को हजारीबाग में आयोजित की गई। इस शिविर में ज्यादातर वैसे प्रतिभागी शामिल थे जिन्हें पारंपरिक चिकित्सा पद्धति की जानकारी है एवं जो इसमें रूचि रखते हैं। साथ ही उन्हें जड़ी बूटी एवं फल फूल की विशेषता भी मालूम थी। प्रशिक्षण के दौरान यह बात उभरकर सामने आई कि विकास के इस दौर में भी जड़ी बूटी का इलाज बहुत मायने रखता है। कोरोना काल के समय गांव घर के लोग अपने पारंपरिक चिकित्सा ज्ञान एवं जड़ी बूटी से ही अपने को ठीक रखा एवं कोरोना जैसे महामारी का सामना किया। देशज चिकित्सा पद्धति आज खतरे में है, इसे बचाना है। देशज ज्ञान को संग्रहित संरक्षित और संवर्द्धित कर प्रचार प्रसार करना है। पारंपरिक ज्ञान का हस्तांतरण भावी पीढ़ी को हो, इसकी रणनीति भी बनानी होगी। इन प्रशिक्षण शिविरों में प्रशिक्षकों ने प्रतिभागियों को विभिन्न प्रकार की जड़ी बूटी और उसके औषधीय गुणों के बारे विस्तारपूर्वक बताया।

आदिवासी संस्कृति एवं आदिवासियत के संरक्षण संवर्द्धन हेतू बैठक

मधुपुर ब्लॉक के चौरा गांव में दिनांक 18 जून 2023 को बैठक आयोजित की गई। यह बैठक आदिवासी संस्कृति को बचाने की कार्य योजना बनाने के लिए आहूत

की गई। आदिवासी संस्कृति को अगर बचाना है तो बच्चों को बचपन से ही अपनी परंपरा, रीति रिवाज, भाषा एवं पहनावे से अवगत कराना जरूरी है। आदिवासी समाज में अलग-अलग मौसम में अलग-अलग पूजा पाठ एवं नाच गान देखने को मिलता है। अलग-अलग नृत्य एवं संगीत में अलग-अलग वाद्य यंत्र भी प्रयोग में लाये जाते हैं। आदिवासी खान-पान की भी अपनी विशेषता है। परंतु अब इनमें बदलाव आया है। यह कैसे बचे यह हमारे लिए चुनौती है। 'संवाद' द्वारा मधुपुर के चौरा के एमेन स्कूल में सेंटर खोला गया है जिसमें बच्चे अपनी मातृभाषा में पढ़ाई करते हैं। उन्हें विभिन्न प्रकार के वाद्ययंत्र बजाने एवं हुनर से अवगत कराया जाता है। कार्यक्षेत्र के प्रत्येक गांव में आदिवासी संस्कृति को बचाने के लिए 'अखरा' बनाने का प्रयास किया जा रहा है। आदिवासी संस्कृति संबंधित पुस्तकों के संग्रह का निर्णय बैठक के दौरान लिया गया। पारंपरिक अनाजों की खेती एवं उसके उपयोग को बढ़ाने का निर्णय भी लिया गया।

कारीगर, काश्तकारों के हुनर विकास हेतु कार्यक्रम

'संवाद' हमेशा से ही कारीगर एवं काश्तकारों के हुनर के विकास के लिए प्रयत्नशील रहा है। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जाभागुड़ी पंचायत के चौरा गांव में स्थानीय संसाधनों के उपलब्धता के आधार पर हुनर विकास का सिलसिला जारी है। खजूर के पत्तों से चटाई बनाना, लकड़ी के हल बनाना, गुंगू पत्ता से टोपी और बरसाती बनाना इत्यादि प्रमुख हुनर हैं जिन्हें सीखकर यहां का समुदाय आत्मनिर्भर तो हो रहा है साथ ही अपने परंपरा एवं संस्कृति को बचाने का प्रयास भी कर रहा है।

आदिवासी समुदाय में खजूर की चटाई का काफी महत्व है। सर्दियों में इसका उपयोग बिछाने और ओढ़ने के लिए किया जाता है। शादी-विवाह के अवसर पर इसका उपयोग शुभ माना जाता है एवं अनिवार्य भी है। उसी तरह गुंगू पत्ते से बनी टोपी एवं बरसाती उन्हें बरसात से तो बचाती है साथ ही खूबसूरत भी होती है। इनमें पत्तों की

कई परतें होती है कि जो पानी से तो बचाव करती है साथ ही शरीर को गर्म रखती है। साथ ही बाजार पर निर्भरता भी कम होती है।

जलवायु परिवर्तन पर जन जागरूकता अभियान

जलवायु परिवर्तन आज के समय में एक गंभीर समस्या बन गयी है। पिछले कुछ वर्षों के दौरान जलवायु में काफी बदलाव आया है। पृथ्वी का तापमान तेजी से बढ़ा

है। बाढ़, सूखा, अकाल एवं प्राकृतिक आपदाओं में वृद्धि हुई है। पर्यावरण का संतुलन भी पूरी तरह बिगड़ चुका है। जलवायु परिवर्तन का असर न सिर्फ हमारे सामाजिक व आर्थिक जीवन पर पड़ा है, बल्कि हमारे स्वास्थ्य पर भी पड़ा है। ऐसे समय में अपनी आजीविका एवं खेती किसानी को जलवायु के अनुकूल एवं स्थायी बनाना हमारे लिए चुनौती है। अपनी खेती किसानी को स्थायी बनाने का एक ही तरीका है कि हम पारंपरिक जैविक खेती को पुनर्जीवित करें। मोटे अनाजों की खेती करें जो कम पानी में भी उपजते हैं एवं शरीर के प्रतिरोधक क्षमता को भी बढ़ाते हैं। जंगल बचाने के साथ-साथ आज के समय में पेड़-पौधे लगाना भी बहुत जरूरी है। इन्हीं सब मुद्दों को लेकर झारखंड के इटकी (रांची), जामताड़ा (जामताड़ा), पालोजोरी (देवघर) एवं मधुपुर (देवघर) प्रखंड में प्रखंड स्तरीय जन जागरूकता अभियान चलाया गया।

जन कल्याणकारी योजनाओं पर जन जागरूकता शिविर

भारत एक कल्याणकारी राष्ट्र है। कल्याणकारी राष्ट्र होने के कारण उन्हें जनता के लिए कल्याणकारी योजनायें चलानी पड़ती है, पर जागरूकता में कमी के कारण आम लोग इसका लाभ नहीं उठा पाता है। लोग इसका लाभ उठायें, वंचितों को उसका अधिकार मिले, इन्हीं सब उद्देश्यों को लेकर 7 कलस्टर में अमलाचातर (जामताड़ा) 18 जून 2023, दूधकेवड़ा (जामताड़ा) 14 जून 2023, विराजपुर (देवघर) 13 जून 2023, चौरा (देवघर) 15 जून 2023, कुल्ली (इटकी, रांची) 19 मई 2023, कुन्दी (इटकी, रांची) 22 मई 2023, सौका (इटकी, रांची) 17 जून 2023 में जनकल्याणकारी योजनाओं पर जन जागरूकता शिविर का आयोजन किया गया। शिविर के दौरान योजनाओं की विस्तृत जानकारी प्रतिभागियों को दी गयी। योजना का लाभ लेने के लिए दस्तावेजों का सही होना भी जरूरी है। कल्याणकारी एवं विकास योजना का लाभ लेने के लिए ग्राम सभा की बैठकों में सक्रिय भागीदारी निभाने की जरूरत है, तभी सभी लाभार्थी एवं वंचितों को उसका लाभ मिल पायेगा।

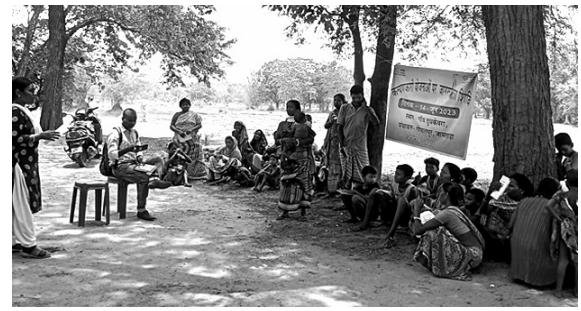

स्थायी समितियों के गठन के लिए पारंपरिक अगुओं के साथ बैठक

आदिवासी क्षेत्र में परंपरागत स्वशासन व्यवस्था मजबूत हो इसके लिए बहुत सारे कानून बने हैं, इनमें 'पेसा' प्रमुख है। पर जानकारी के अभाव में लोग उन कानूनों का सही उपयोग नहीं कर पा रहे हैं। स्वशासन व्यवस्था की मजबूती, महिला सशक्तिकरण, टिकाऊ आजीविका एवं ग्राम सभा सशक्तिकरण का कार्य 'संवाद' वर्षों से करती आ रही है। 'पेसा' के धारा 10 (1) ख के अनुसार ग्राम सभा को अपने दायित्व एवं कर्त्तव्य को पूरा करने के लिए 8 समितियों का गठन करना है। इसी सिलसिले में 'संवाद' द्वारा पारंपरिक अगुओं एवं चुने प्रतिनिधि के साथ बैठक का आयोजन झारखंड के चार जिले के 140 ग्राम सभा में किया गया। 'संवाद' अपने कार्य क्षेत्र में 8 समितियों में पांच समितियों जिसमें ग्राम विकास समिति, ग्राम शिक्षा समिति, ग्राम स्वास्थ्य समिति, ग्राम कृषि समिति एवं ग्राम निगरानी समिति का गठित कर उनके सफल संचालन के लिए प्रयासरत है ताकि ग्राम सभा मजबूत हो।

ग्रीन क्लबों का गठन

झारखंड सहित देश और दुनिया भयंकर संकट के दौर से गुजर रही है। जलवायु संकट बढ़ता जा रहा है एवं आजीविका के श्रोत खत्म होते जा रहे हैं। खेती किसानी से लेकर लघु एवं कुटीर उद्योग मृत प्राय हो गये हैं। करोड़ों युवा काम की तलाश में शहरों/महानगरों की ओर आगे जा रहे हैं। यह ऐच्छिक पलायन नहीं है बल्कि मजबूरन लोगों को बाहर जाना पड़ रहा है। इस पलायन को रोकना, इनके लिए सम्मानजनक आजीविका और रोजगार की व्यवस्था अपने गांव या पास पड़ोस में करना तथा आसपास की प्रकृति परिवेश और संस्कृति की रक्षा करना आज की बड़ी चुनौती है। इसी चुनौती को देखते हुए 'संवाद' ने 'ग्रीन क्लब' की अवधारणा (नैसर्गिक संतुलन) और ढांचे को आगे बढ़ाने के लिए युवाओं के साथ मिलकर उन्हें, शिक्षित-प्रशिक्षित और हुनरमंद बनाने का कार्य कर रही है।

''सभ्यता का संकट बनाम आदिवासियत'' पुस्तक का लोकार्पण

पर्यावरणविद् एवं समाजकर्मी घनश्याम द्वारा लिखित पुस्तक ''सभ्यता का संकट बनाम आदिवासियत'' का लोकार्पण सह परिचर्चा दिनांक 15-16 अप्रैल 2023 को अग्रसेन भवन, मधुपुर में तथा दिनांक 26 मई 2023 को टी.आर.आई. सभागार, रांची में डॉ. रामदयाल मुंडा शोध एवं कल्याण संस्थान एवं संवाद द्वारा संयुक्त रूप से किया गया। इन कार्यक्रमों में बड़ी संख्या में शिक्षाविद्, साहित्यकार, सामाजिक कार्यकर्त्ता और सांस्कृतिककर्मी शामिल हुए तथा इस पुस्तक के माध्यम से उठाये गये महत्वपूर्ण मुद्दों पर विचार विमर्श किया। इस अवसर पर वक्ताओं ने अपने अनुभवों को साझा करते हुए कहा कि इस पुस्तक में इतिहास, समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र,

एवं सभ्यता पर विमर्श सहित सारे चित्र सम्मिलित हैं। वैकल्पिक सभ्यता की तलाश के साथ स्वशासन, स्वावलंबन एवं स्वाभिमान के संबंध में विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है। इस पुस्तक के द्वारा लेखक ने भूमण्डलीकरण की पूरी क्रोनोलोजी को अत्यंत सरल भाषा एवं सहज शैली में प्रस्तुत किया है। यह किताब कोरोना वायरस के फैलने, उसके विस्तार एवं उससे निबटने के लिए किये गये जन प्रयासों पर चर्चा तो करती है साथ ही यह भी बताती है कि यह पूंजीवाद की कोख से उपजी बीमारी है। दुनियाभर के महानगरों में कोरोना ने ज्यादा तांडव दिखाया है। इसकी तुलना में सुदूर इलाकों में इसका असर कम दिखा है। आज दुनिया को आदिवासी संस्कृति और उनके देशज तौर तरीके से ही बचाया जा सकता है। ''सभ्यता के संकट बनाम आदिवासियत'' सामाजिक और अकादमिक दोनों ही दृष्टि से महत्वपूर्ण पुस्तक है। विमर्श के दौरान सभी का मानना था कि इस पुस्तक पर शहरों के साथ-साथ आदिवासी गांवों में भी चर्चा की जानी चाहिये। यह पुस्तक सामाजिक कार्यकर्त्ताओं के लिए अत्यंत ही उपयोगी है।

- आधी दुनिया डेस्क

'संवाद' द्वारा प्रकाशित कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकें

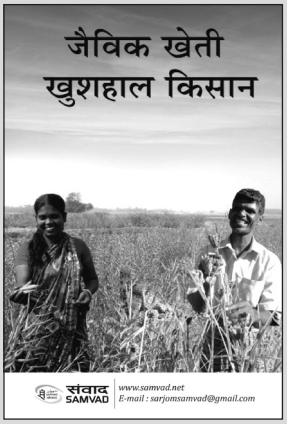

जैविक खेती खुशहाल किसान
प्रकाशन वर्ष : 2017

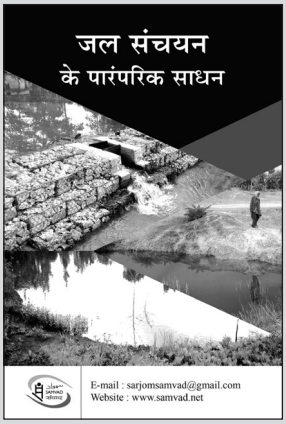

जल संचयन के पारंपरिक साधन
प्रकाशन वर्ष : 2019

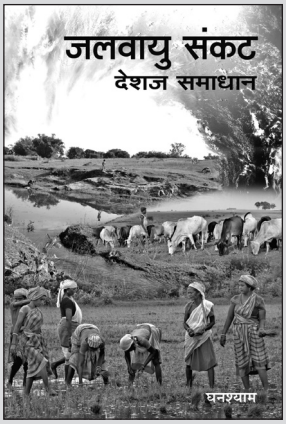

जलवायु संकट देशज समाधान
प्रकाशन वर्ष : 2013

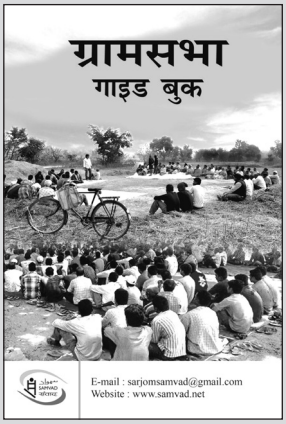

ग्रामसभा गाइड बुक
प्रकाशन वर्ष : 2020

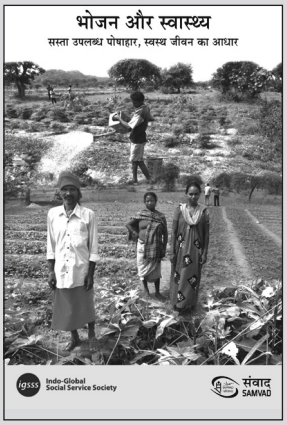

भोजन और स्वास्थ्य
प्रकाशन वर्ष : 2017

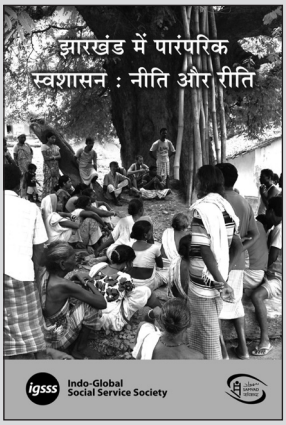

झारखंड में पारंपरिक स्वशासन :
नीति और रीति
प्रकाशन वर्ष : 2014

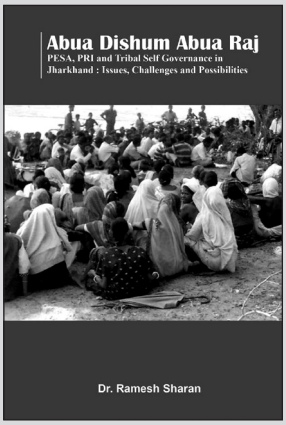

अबुआ दिशुम अबुआ राज

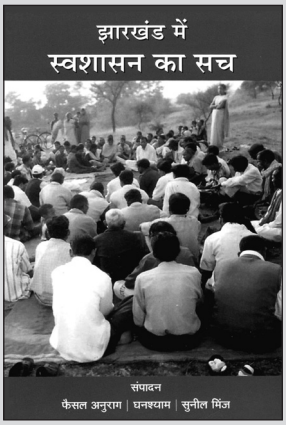

झारखंड में स्वशासन का सच
प्रकाशन वर्ष : 2011

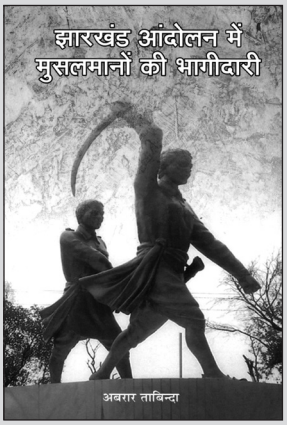

झारखंड आंदोलन में मुसलमानों की
भागीदारी
प्रकाशन वर्ष : 2011

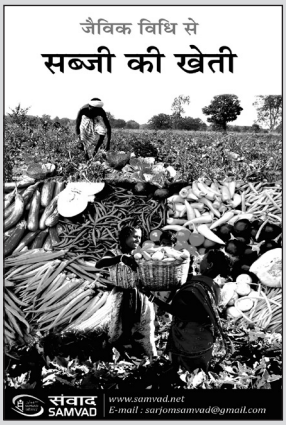

जैविक विधि से सब्जी की खेती
प्रकाशन वर्ष : 2022

आओ सीखें-सीखाएँ
देला चेदआबोन-चेदओचो कोवाबोन
(हिन्दी-संताली)
प्रकाशन वर्ष : 2020

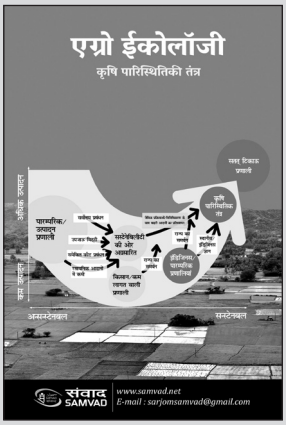

एग्रो ईकोलॉजी कृषि पारिस्थितिकी तंत्र
प्रकाशन वर्ष : 2023

संपर्क : www.samvad.net
sarjomsamvad@gmail.com